दो शब्द

मुझे श्रीरामेश्वरसहाय जी, विशेषाधिकारी पाठ्य पुस्तक, शिक्षा-विभाग, उत्तर-प्रदेश ने श्रीभगवतीप्रसाद पांथरी द्वारा लिखित 'प्राचीन भारत' नामक पुस्तक समीक्षा के लिए भेजी थी। मैंने उसे आद्योपान्त पढ़ा और जहाँ-तहाँ कुछ सुझाव भी दिये। पुस्तक अब पुनः संशोधित हो कर निकल रही है। श्रीपांथरीजीने इसको लिखने में बड़े परिश्रम और अध्ययन से काम लिया है और आज तक की नवीन खोजों का उपयोग किया है। पुस्तक, जैसा कि होना चाहिए, बच्चों के लिए सरल और रोचक ढंग पर लिखी गयी है।

रमाशंकर त्रिपाठी
एम. ए., पी. एच. डी.
अध्यक्ष इतिहास विभाग
हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

—:o:—

विषय-सूची

अध्याय १

हमारे देश की भौगोलिक स्थिति

इतिहास किसे कहते हैं? इतिहास वास्तव में मनुष्य के आचरण और कृतियों का लेखा या वर्णन है। इस वर्णन के द्वारा ही हमें मालूम होता है कि मनुष्य ने दुनिया के प्रारंभ होने से ले कर आज तक क्या-क्या काम किये और किस प्रकार वे उन्नति या अवनति के मार्ग पर चलते आये हैं; इसलिए अब आप कह सकते हैं कि इतिहास का कार्य किसी देश के निवासियों की कृतियों का वर्णन करना है। इन कृतियों से हमारा तात्पर्य किसी जाति के राज्य, समाज, धर्म, सभ्यता, कला-कौशल, उद्योग-धंधों तथा साहित्य-संबंधी कार्यों और विचारों से है।

किन्तु यह याद रखना चाहिए कि मनुष्यों के इन कृत्यों पर, जिसे हम इतिहास कहते हैं, उनके देश की भौगोलिक स्थिति का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव कई तरह से पड़ता है। उदाहरण के लिए किसी देश का जलवायु ही इसका निश्चय करता है कि उसके निवासियों का भोजन किस प्रकार का हो और वह उन्हें कम परिश्रम से मिल सकता है या अधिक परिश्रम से।

इसीलिए ठंडे देशों के रहनेवालों का रहन-सहन, खाना-पीना आदि गरम देश के रहनेवालों से भिन्न हुआ करता है। ठंडे देश के रहनेवाले खूब तंदुरुस्त, मेहनती और फुर्तीले होते हैं। ठंड के कारण उन्हें मांस व मदिरा खाने-पीने की आदत भी होती है, किन्तु गरम देशवालों को मांस-मदिरा-जैसी वस्तुओं के सेवन की जरूरत नहीं होती। शीत प्रदेशवालों की भाँति वे ऊनी वस्त्र नहीं पहनते। शरीर ढकने के लिए सूती कपड़े ही उनके लिए काफी होते हैं।

इसके सिवा भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव मनुष्यों के भावों और विचारों पर भी हुआ करता है। मनुष्य जैसे वायुमंडल और प्राकृतिक स्थिति में रहता है। उसका उसके दिल और दिमाग पर गहरा प्रभाव होना जरूरी है। हिमालय की सुन्दर विशाल घाटियों और वनों में विचरनेवाले ऋषियों, तपस्वियों और कवियों के विचारों में इसीलिए हिमालय-जैसे ऊँचे, गंभीर और सुन्दर विचार पाये जाते हैं। हमारे यहाँ के प्राचीन ऋषि-मुनि आजकल के साधु-संन्यासियों की भाँति हिमालय के रमणीय पहाड़ी स्थानों में आश्रम बनाते और वहां के शांत, गंभीर एवं मनोहर वातावरण में रह कर भगवद्भजन, मनन, चिंतन और अध्ययन किया करते थे। इन कारणों से ही यह कहा गया है कि किसी देश का इतिहास बनाने में उस देश की भौगोलिक स्थितिका बहुत बड़ा हाथ रहता है।

भारत का भूगोल—हमारा देश भारत संसार के

बहुत बड़े देशों मे से एक है। यह देश एशिया महाद्वीप मे है और उसके दक्षिणी भाग के बीच मे स्थित है। इसके उत्तर में सिरहाने की तरफ एक ओर से दूसरी ओर तक हिमालय पहाड की ऊँची और विशाल दीवार खडी है जो उसे तिब्बत, चीन और रूस आदि देशों से अलग कर देती है। इसी तरह हमारे देश के तीन ओर समुद्र है जो उसे अन्य देशों से अलग करता है।

भोगोलिक विभाग—भौगोलिक रूप से भारत को चार प्राकृतिक भागों में बॉटा जा सकता है।

१—हिमालय का पहाड़ी भाग, २—सिन्धु और गगा का मैदान, जिसे उत्तरी मैदान भी कहते हैं, ३—दक्षिण का पठार और ४—सुदूर दक्षिण का भाग।

हिमालय का पहाडी भाग—इस भाग मे हिमालय पर्वत-मालाओं से घिरा हुआ प्रदेश है। हिमालय पर्वत १,४०० मील लंबा है। इसकी चोटिया २५ से २६ हजार फ़ुट तक ऊॅची हैं। हिमालय की पर्वत-श्रेणिया उत्तर-पश्चिम मे अफगानिस्तान से शुरू होती है और उत्तर-पूर्व मे सैकडों मील तक फैलती हुई आसाम और बर्मा की पहाडियों से मिल जाती हैं। इन श्रेणियों के ऊॅचे भाग बर्फ से ढके रहते हैं। पर्वत-श्रेणियों के बीच मे गहरी-गहरी घाटिया हैं जिनमे तेज धार के साथ बर्फ से ढकी नदियॉ बहती हैं। ये पर्वत-मालाएॅ पत्थर की दीवार-जैसी हैं; इसीलिए कहा गया है कि पर्वत-मालाएँ भारत को एशिया के दूसरे देशों से अलग करती हैं।
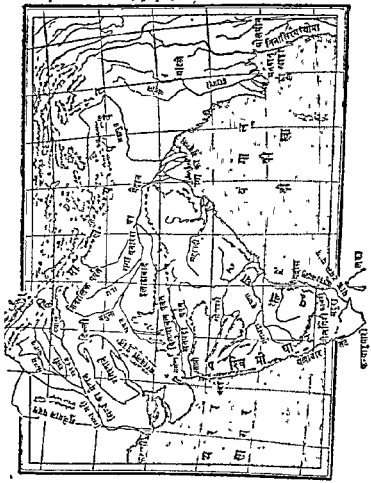
भारत के भौगोलिक विभाग

यह न समझना चाहिए कि हिमालय की यह दीवार बिलकुल लाँघने के योग्य नहीं है। हिमालय पर्वत में कुछ ऐसे रास्ते या दर्रे भी मौजूद हैं जिनसे होकर बहुत प्राचीन काल से बाहरी लोग हमारे देश में आते-जाते रहे हैं। इन रास्ते में खैबर, गोमल और बोलन के दर्रे बहुत प्रसिद्ध हैं।

इसी प्रकार उत्तर में तिब्बत से नेपाल तक आने-जाने के रास्ते हैं। इन रास्तों से भारत के लोग तिब्बत और चीन में और तिब्बत तथा चीन के लोग भारत में आया-जाया करते थे।

हिमालय के प्रदेश में कश्मीर, नेपाल, भूटान, शिकम आदि राज्य भी स्थित हैं। यह पहाड़ी प्रदेश अफगानिस्तान और कश्मीर से आसाम तक फैला हुआ है। इस प्रदेश में अनेक जड़ी-बूटियाँ पायी जाती हैं। यहाँ के वन-वृक्षों से मकान बनाने के लिए लकड़ी और पहाड़ियों से पत्थर मिलते हैं। इसमें बड़े-बड़े रमणीय स्थान हैं जहाँ सैर करने के लिए दूर-दूर से यात्री आया करते हैं।

सिंध तथा गंगा का उत्तरी मैदान—इस भाग में पंजाब, राजपूताना, उत्तर-प्रदेश, बिहार और बंगाल के प्रदेश शामिल हैं। इस प्रदेश को एक ओर सिंध और उसकी सहायक नदियाँ सींचती हैं और दूसरी ओर उसे गंगा तथा उसकी सहायक नदियाँ तर रखती हैं। नदियों का प्रदेश होने से यह उत्तरी मैदान हमेशा से उपजाऊ रहा

है। खेती यहाँ पर खूब होती है। ये नदियाँ गहरी हैं; इसलिए इनके द्वारा पुराने समय में नावों से व्यापार भी खूब होता था। व्यापार की इस सुविधा के कारण ही उत्तरी भारत के सभी बड़े-बड़े नगर इन्हीं नदियों के तट पर बसे हुए हैं।

खेती और व्यापार के केन्द्र होने के कारण उत्तरी मैदान प्राचीन काल से ही बहुत धन-जनपूर्ण रहा है। यह उत्तरी मैदान आर्यावर्त्त नाम से भी प्रसिद्ध है। यहाँ पर प्राचीन काल में अनेक शक्तिशाली राज्य बने और बिगड़े।

यह उत्तरी प्रदेश हमारे धर्म और संस्कृति एवं सभ्यता का भी केन्द्र रहा है। हमारे पूर्वज आर्यों ने सिंध के प्रदेश में ही वेदों और उपनिषदों की रचना की थी जो हिन्दू-धर्म के अनूठे और बेजोड़ ग्रंथ हैं। राम, कृष्ण और बुद्ध ने इसी आर्यावर्त्त की भूमि में जन्म लिया और हमें सत्य, अहिंसा तथा सब से प्रेम करने का पाठ पढ़ाया।

दक्षिण का पठार—दक्षिण का पठार एक त्रिभुज की शक्ल का है जो विंध्याचल के दक्षिण में फैला हुआ है। विंध्याचल की पर्वत-माला उत्तरी भारत या आर्यावर्त्त को दक्षिणापथ से अलग करती है। दक्षिण पठार के तीन तरफ पहाड़ हैं। उत्तर में विंध्याचल और सतपुड़ा पहाड़, पश्चिम में पश्चिमी घाट और पूर्व में पूर्वी घाट।

सुदूर दक्षिण—सुदूर दक्षिण का भाग कृष्णा और तुंगभद्रा नदी से कुमारी अंतरीप तक फैला हुआ है। यह

भाग उत्तरी भारत से बहुत दूर है; इसलिए यहाँ की द्रविड़ जातियों पर आर्यावर्त के राजा तथा विदेशी आक्रमणकारी कभी पूरी तरह अधिकार न जमा सके। इस कारण यहाँ के द्रविड़ लोग बिना किसी विघ्न के राज्य करते रहे। सुदूर दक्षिण में तमिलनाड, केरल और कर्णाटक का अधिकांश भाग सम्मिलित है।

भारत का क्षेत्रफल—भारत रूस को छोड़ कर शेष योरप के बराबर है। अतः अनुमान किया जा सकता है कि हमारा देश कितना बड़ा है। इसका क्षेत्रफल अठारह लाख दो हजार वर्गमील हैं। सन्१९३१ की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जन-संख्या ३५ करोड़ थी। इसमें ७ करोड़ मुसलमान हैं। बाकी २८ करोड़ में हिन्दू, सिख, जैन, पारसी ऐंग्लो-इंडियन आदि सब शामिल हैं। सन् १९३२ के बाद से भारत की जन-संख्या में काफी वृद्धि हुई है। सन् १९४१ की जन-गणना के अनुसार भारत की जन-संख्या लगभग ४० करोड़ है। इसी के अनुसार उत्तर-प्रदेश की आबादी पाँच करोड़, पचास लाख, बीस हजार है, जब कि सन् १९३१ में यहाँ की आबादी कुल चार करोड़, छियानवे लाख, चौदह हजार थी।

भारत की प्रमुख नदियाँ—उत्तरी भारत की तीन नदियाँ बहुत ही प्रसिद्ध हैं, सिन्धु, गंगा और ब्रह्मपुत्र। सिंधु और ब्रह्मपुत्र तिब्बत से निकलती हैं। सिंधु १,७०० मील लम्बी है और पंजाब तथा सिंध से हो कर अरब-सागर

में जा गिरती है। ब्रह्मपुत्र १,८०० मील लम्बी है और बंगाल की खाडी में गिरती है।

गंगा हिमालय से निकलती है। इसका उद्गम-स्थान गढ़वाल के गंगोत्तरी पहाड में है। यह नदी उत्तरी भारत के मैदान को सींचती हुई बंगाल की खाडी में जा कर गिरती है। इसकी लम्बाई १,५४० मील है। भारत की नदियों में गंगा बहुत पवित्र मानी जाती है। इसका जल स्वास्थ्यवर्द्धक कहा जाता है। अधिकांश हिन्दुओं का विश्वास है कि गगा में नहाने और उसका नाम जपने से मनुष्य के सारे पाप धुल जाते हैं। निःसन्देह यह गंगा की कृपा का ही फल है कि उत्तरी भारत का मैदान ऐसा हरा-भरा और उपजाऊ है।

सिंधु और उसकी सहायक झेलम, चिनाव, रावी, व्यास, सतलज और सरस्वती नदियों का प्रदेश प्राचीन काल में 'सप्त सिंधव' के नाम से विख्यात था। हमारे पूर्वज वैदिक काल के आर्य इसी प्रदेश मे रहते थे। यहीं पर उन्होंने वेदों की रचना की थी। मोहिंजोदड़ो और हडप्पा की सभ्यता का उत्थान और पतन सिंधु की निचली घाटी से ही हुआ था।

इसी प्रकार गगा के प्रदेश में भी आर्यों ने अपने बड़े-बड़े राज्य स्थापित किये थे। प्राचीन-काल के सुप्रसिद्ध मौर्य, गुप्त आदि वंशों का यहीं पर विकास और ह्रास हुआ था।

भारत की भौगोलिक विचित्रता—भारत बड़ा

ही रमणीय और सुन्दर प्रदेश है। यह देश भौगोलिक विचित्रताओं के लिए प्रसिद्ध है। उत्तर में हिमालय का ठंडा पहाड़ी प्रदेश है। यह प्रायः बर्फ से ढका रहता है। पश्चिम में जलता हुआ रेगिस्तान है, यहाँ गरमी के मारे प्राणिमात्र व्याकुल और बेचैन हो उठते हैं, किन्तु पूर्व की ओर का मैदान उर्वर और तर है। इसी तरह दक्षिण भारत में भी यदि कहीं पर बहुत गरमी पड़ती है तो कहीं पर जलवायु बहुत ही सुहावना और स्वास्थ्यप्रद है।

जलवायु की तरह वर्षा का भी यहाँ विचित्र हाल है। चेरापूँजी और आसाम में साल में लगभग ५०० इंच पानी बरसता है, लेकिन दूसरी ओर सिन्ध में कुल ५ इंच ही वर्षा होती है। प्राकृतिक बनावट, जलवायु और वर्षा की इस विचित्रता के कारण हमारे देश में अनेक प्रकार की फसलें, अनाज तथा फल-फूल पैदा होते हैं। ठंढी स ठंढी और गरम से गरम जगह की पैदावार हमारे देश में पैदा होती है। उत्तरी भारत के उर्वर मैदान में गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा, तरह-तरह की दालें तथा सरसों, गेहूँ, रेंडी आदि पैदा होती है।

दक्षिणी भारत में भी सभी प्रकार के अनाज, दाल तथा रूई आदि पैदा होती है। यहाँ पर मसाले, विशेष कर काली मिर्च, की पैदावार बहुत होती है। मलाबार काली मिर्च के लिए प्रसिद्ध है।

अनाज और फल-फूलों के अलावा हमारेदेश में सोना,

चांदी, लोहा, तांबा और हीरा आदि बहुमूल्य पत्थरों की खानें भी पायी जाती हैं। इनके अलावा प्राचीन काल में यहाँ मोती भी बहुत निकाले जाते थे।

देश की इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए महाकवि डाक्टर मुहम्मद इकबाल ने लिखा है—

"सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्तां हमारा"

अतः इस समृद्धि और सम्पन्नता के कारण प्राचीन काल में विदेशी लोग भी हमारे देश को सोने की चिड़िया कहा करते थे और हर समय उसके पंख नोचने की ताक में रहते थे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—भारत के प्राकृतिक विभाग कितने और कौन कौन से हैं ?
२—भारत की मुख्य-मुख्य नदियों के नाम बताओ उनसे क्या-क्या लाभ हैं ?
३—भारत को सोने की चिड़िया क्यों कहा जाता था ?

अध्याय २

भारत के पुराने निवासी

हमारे देश का प्राचीन नाम भारतवर्ष है और लगभग यही नाम आज भी प्रचलित है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में इस नाम के बारे में एक कहानी दी गयी है। इस देश में बहुत प्राचीन काल में राजा दुष्यंत राज करते थे। इनकी रानी शकुंतला देवी थीं। इस रानी से दुष्यंत के प्रतापी पुत्र भरत का जन्म हुआ। भरत बचपन से ही बड़े वीर और प्रतिभाशाली थे। कहते हैं कि जंगलों में विचरते हुए वे, बालक होने पर भी, भयानक जंगली पशुओं—शेर, बाघ और भालुओं से तनिक भी न डरते थे। बड़े होने पर जब भरत राजा हुए तो उन्होंने जंबूद्वीप के इस पूरे 'वर्ष' या खंड को जीत लिया और चक्रवर्ती राजा बन गये। इस पूरे वर्ष पर उनका अधिकार हो जाने के कारण तब से हमारा देश उनके नाम पर 'भारतवर्ष' कहलाने लगा।

भारतवर्ष का अंग्रेजी नाम 'इंडिया' है। प्राचीन काल के ईरानी लोग हमारे देश को हिन्दुस्तान और हमें हिन्दू कहा करते थे। बाद में जब तुर्क, मुगल और पठान आदि मुस्लिम विजेता इस देश में आये तो वे भी ईरानियों की तरह हमारे देश को हिन्दुस्तान और यहां के निवासियों को हिन्दू कहने लगे। मुसलमान इतिहासकारों की पुस्तकों में हमारे देश का नाम हिन्दुस्तान ही लिखा मिलता है।

द्रविड़ जाति—द्रविड़ जाति भारत की बहुत पुरानी जातियों में से है। दक्षिणी भारत में आजकल इसी जाति के लोग अधिक हैं। इस जाति का आदि निवास-स्थान भारत ही था, या यह किसी बाहरी देश से आ कर यहाँ पर बसी—इस बारे में कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। विद्वानों में इस बात पर मतभेद है। कुछ विद्वानों का कहना है कि द्रविड़ सदैव से ही भारत के रहनेवाले न थे। ये समुद्र की राह से हमारे देश में आये और सिंधु नदी के प्रान्त तक फैल गये। इसके विपरीत कुछ विद्वान कहते हैं कि वे पहाड़ी रास्तों या दर्रों से हो कर आये। इन लोगों का कहना है कि बिलोचिस्तान में कुछ ऐसे लोग हैं जिनकी भाषा द्रविड़-भाषाओं से मिलती है और यह इस बात का प्रमाण है कि बाहर से जब द्रविड़ लोग आये तो उन्होंने सब से पहले बिलोचिस्तान के प्रदेश पर ही कब्जा किया और फिर इधर-उधर सारे देश में फैल गये, किन्तु ये सब बातें अटकल से ही कही जाती हैं। जो भी बात रही हो, कम से कम इतना सही है कि आर्यों की भाँति द्रविड़ भी बहुत सभ्य थे और प्राचीन काल में किसी समय सारे देश में इन्हीं का प्रभाव फैला हुआ था।

बाद में उत्तरी भारत से आर्यों ने द्रविड़ों का प्रभाव समाप्त कर दिया और उन्हें दक्षिण की तरफ भगा दिया। यही कारण है कि द्रविड़ जाति अब केवल

दक्खिनी भारत में ही पायी जाती है। ये विशेषतया मद्रास, बम्बई और तमिल प्रांत में रहते हैं।

द्रविडों में कोल, भील, गोंड और संथाल जातियों को भी गिना जाता है, लेकिन कुछ विद्वान् इन जंगली जातियों को द्रविडों से भिन्न मानते हैं। उनका कहना है कि ये जंगली जातियाँ नूतन पाषाण-युग के निवासियों की संतान हैं, जिन्हें द्रविडों ने अपने अधीन कर लिया था, किंतु उन्नतिशील द्रविड जाति की भाँति इन जातियों ने कभी कोई उन्नति नहीं की और आज तक ज्यादातर ये जंगली अवस्था में ही हैं। भीलों का निवास-स्थान राजपूताना और विंध्याचल के पर्वतों में है और संथाल, गोंड आदि मध्यप्रदेश, उडीसा तथा छोटा नागपुर में रहते हैं।

द्रविड़-सभ्यता—द्रविड जाति के लोगों का कद छोटा, नाक चौडी, बाल घने तथा काले और आँखें भी काली होती थीं। वे शांत प्रकृति के, बुद्धिमान और सभ्य थे। उनका जीवन साधारण था। वे खेती करते और पशु पालते थे। उनका जीवन गाँवों में बीतता था।

वे धातु का प्रयोग करना भी जानते थे। वे ताँबे से हथियार और औजार बनाते और सोने-चाँदी के गहने बना कर पहनते थे। वे सूत कात कर कपडा बुनना और उसे रंगना भी जानते थे। वे नाव बनाना जानते थे। नावों में बैठ कर वे समुद्रों को पार कर दूसरे देशों तक जा पहुँचते थे। दूर-दूर देशों से व्यापार भी किया करते थे।

समाज के ऊपर शासन करने के लिए उनमें राजा हुआ करता था। वे लिखना-पढ़ना भी जानते थे। उनकी भाषा उन्नत थी, लेकिन उनकी भाषा के अक्षर हमारे आजकल के नागरी अक्षरों की भाँति न थे। शब्दों के स्थान पर चित्रों और चिह्नों का प्रयोग करते थे।

उनके समाज में माता का स्थान पिता से ऊँचा था। उनमें जाति-भेद न था। वे धार्मिक थे और भूत-प्रेत तथा देवी-देवताओं की पूजा किया करते थे। पृथ्वी और सांपों का भी वे पूजन करते थे। उनमें पशुओं को बलि चढ़ाने की प्रथा थी। वे मुर्दों को जमीन में गाड़ दिया करते थे। मृत स्त्री या पुरुष के निजी गहने, हथियार और परलोक के लिए भोजन की सामग्री भी गाड़ते समय उनके साथ रख देते थे।

आर्य जाति—आर्य जाति का विस्तारपूर्वक हाल हम आगे लिखेंगे। यहाँ केवल इतना कहना काफी होगा कि आज भी भारतवासियों की अधिकतर संख्या अपने को आर्य-संतान कहने में अपना गौरव समझती है। यह जाति संसार की सभ्य जातियों में बहुत ऊँचा स्थान रखती है। आर्य लोग देखने में सुन्दर होते थे। इनका रंग गोरा, शरीर सुडौल, कद लंबा, आँखें काली तथा बड़ी और नाक ऊँची होती थी। जब संसार की अनेक जातियाँ अंधकार में पड़ी हुई थीं तब आर्य लोग सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँच चुके थे।

जातियों का भेद—प्राचीन काल में बहुत-सी विदेशी जातियाँ भी बाहर से हमारे देश में आयीं और यहीं बस गयीं, लेकिन बाहर से आनेवालों में बहुत-सी जातियाँ कुछ समय बाद हम में घुल-मिल कर एक हो गयीं। यूनानी या यवन, पह्लव, शक, कुशान, हूण आदि ऐसी ही जातियाँ हैं जो पुराने समय में हमारे देश में आयी थीं और कुछ दिन बाद यहीं के आचार-विचार और संस्कृति को अपना कर यहीं के समाज में समा गयीं। अतः आज की हिन्दू जाति में अनेक विदेशी जातियाँ भी दूध में शक्कर की तरह घुली-मिली हैं और उन्हें अपने से अलग करना असम्भव है। सातवीं सदी के बाद समय-समय पर पारसी, अरब, तुर्क, पठान और मुगल आदि लोग भी हमारे देश में आये और यहाँ रहने लगे।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. हमारे देश का नाम क्या है ? यह नाम किस प्रकार पड़ा ?
२. द्रविड़ कौन थे ? उनकी सभ्यता के बारे में आप क्या जानते है ?
३. हमारे देश में बाहर से कौन-कौन जातियाँ आयीं ?

———

अध्याय ३

सभ्यता का विकास

एक समय था जब सब जगह मनुष्य जंगली या असभ्य अवस्था में थे। उस समय आदमी का रहन-सहन ऐसा न था जैसा आजकल हमारा है। हम लोग तो सभ्य हो चुके हैं, पर याद रखो कि बहुत पहले हम और दुनिया के सभी लोग जंगली अवस्था मे थे और धीरे-धीरे उन्नति कर के ही वर्तमान अवस्था को पहुँचे हैं। यह बात दूसरी है कि किसी देश के मनुष्य अन्धकार और जंगलीपन की दशा से शीघ्र ही उन्नति की ओर चल पड़े और कितने ही अब भी उसी अन्धकार में भटक रहे हैं।

यह उन्नति मनुष्य-जाति ने एक दिन में नहीं की। आज पुरानी चीजों की खोज में कुछ हथियार, हड्डियाँ और चट्टानों तथा हड्डियों पर बने हुए चित्र पाये गये हैं। उन्हें इतिहास के विद्वानों ने लाखों वर्ष पुराना बतलाया है। इससे जान पड़ता है कि मनुष्य आज से लाखों वर्ष पहले से ही इस पृथ्वी पर मौजूद था, लेकिन इस अत्यंत प्राचीन समय में वह जंगली अवस्था में था और धीरे-धीरे सभ्य बन रहा था।

आदि अवस्था में मनुष्य की दशा—शुरू में आदमी जब जंगली अवस्था में था, तब वह जंगलों में इधर-उधर नंगा फिरता था। जङ्गली फल और कंद, मूल जो उसे

जंगलों में मिल जाते थे उन्हें खा कर वह अपना पेट भर लिया करता था। पेड़ों की टूटी टहनियों के हथियार बना कर वह जंगली जानवरों का शिकार भी किया करता था। वह जिस जानवर को मार लेता उसका मांस कच्चा ही खा जाता था; क्योंकि तब उसे आग जलाना तथा उसका प्रयोग करना नहीं मालूम था। हिंसक जानवरों के भय से इस जंगली आदमी ने शुरू से चिल्लाना और शोर मचाना सीखा। इसके द्वारा वह अनेक साथियों को भी भय की सूचना दिया करता था। धीरे-धीरे चिल्लाने की इन आवाजों से ही मनुष्य ने अपने दिल के भावों को बोल कर बतलाना सीखा। पर इस अवस्था तक पहुँचने में उसे हजारों वर्ष लगे होंगे। इस युग के मनुष्यों को लकड़ी या काष्ठ के युग का मनुष्य कहा जाता है; क्योंकि उस समय ये लकड़ी के सिवा किसी दूसरी चीज का प्रयोग नहीं जानते थे।

पुराना पाषाण या पत्थर-काल—आगे चल कर आदमी ने आग का उपयोग करना जान लिया। शायद किसी समय बिजली के गिरने से जंगल का कोई सूखा पेड़ जल उठा होगा जिसे देख कर जंगली मनुष्य को इस नयी चीज का पहले-पहल दर्शन हुआ। शायद कहीं पर ज्वालामुखी पहाड़ की लपटें भी उसे देख पड़ी होंगी। पहले उसे यह आग कुछ डरानेवाली चीज लगी होगी, पर बाद में वह उसका प्रयोग करना सीख गया। आग का प्रयोग सीखने पर वह मांस को भून कर खाना सीख गया।

इस तरह भोजन को पका कर खाने की रीति चल पड़ी। शीत-काल में या वर्षा से भीग कर ठिठुरने पर वह आग से शरीर को सेंकना सीख गया। इस तरह आग का आविष्कार मनुष्य के लिए बहुत ही काम का निकला और उसे सभ्य बनाने में सहायक हुआ।
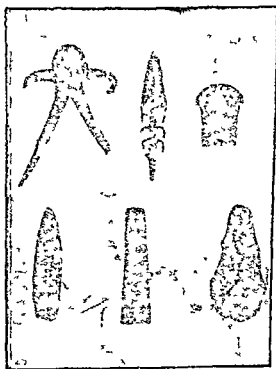
पाषाण काल

इसके बहुत बाद मनुष्य ने लकडी के कमजोर हथियारों की जगह हड्डी और पत्थर के औजार तथा हथियार बनाना सीख लिया। सभ्यता के विकास मे यह एक आगे का कदम था। मनुष्य अब काष्ठ के युग से पत्थर या पाषाण के युग में चला आया। लकड़ी के औजार कमजोर होने से टूट-फूट जाते थे, लेकिन

पत्थर के औजार खूब मजबूत होते थे; इसलिए लाखों वर्ष बीत जाने पर भी ये औजार नष्ट नहीं हो सके और आजकल भी पुराने औजार मिलते रहते हैं। पत्थर के इस तरह प्रयोग किये जाने के कारण विद्वानों ने इस काल को पाषाण-युग का नाम दिया है। इस जमाने में धातु का प्रयोग नहीं होता था; क्योंकि तब तक मनुष्य को धातुओं तथा उसके उपयोग का पता नहीं चलता था। इनके पत्थर के औजार मोटे और भद्दे होते थे। इनके मुख्य औजार कुल्हाड़े, नेजे, भाले, चाकू आदि थे। इस पाषण-युग को दो भागों में बाँटा गया है—पुराना पत्थर या पाषण-युग और नया पत्थर या पाषाण-युग।

पुराने पाषाण-युग में मनुष्य की दशा—पुराने पाषाण-काल में मनुष्य जंगली अवस्था में ही थे। लकड़ी के युग की भाँति वे जंगल में कन्द, मूल, फल और शिकार पर निर्वाह करते थे। हिरन, सूअर, भैंस आदि जानवरों को मार कर उनका मांस खाते थे, लेकिन अब कच्चा खाने के बजाय वे मांस को आग पर भून लिया करते थे। शरीर को ढकने के लिए वे पत्तों या जानवरों की खालों से कमर को लपेट लिया करते थे। वे घर बनाना नहीं जानते थे। इधर-उधर घूमते फिरते थे। मरने पर वे लाश को गाड़ने या जलाने के बजाय जंगलों में खुला छोड़ देते थे। इस काल के मनुष्यों का रंग काला, कद और सिर छोटा, नाक चिपटी और बाल घुँघराले होते थे।

भारत में इस युग के मनुष्यों के चिह्न दक्षिण-पूर्वीय भागों में तथा विंध्य के पठार पर मिले हैं

नया पाषाण-युग—धीरे-धीरे पुराने पाषाण-काल के लोग उन्नति करते चले गये। पहले से अब उनके रहन-सहन और औजार-हथियारों में भी अन्तर आ गया; इसलिए इन उन्नत लोगों को नये पाषाण-युग का मनुष्य कहा जाता है। पुराने पाषाण-काल और नये पाषाण युग में समय का बड़ा भारी अन्तर है। हजारों वर्ष तक पुराने पाषाण-युग में रहने के बाद ही जङ्गली मनुष्य थोड़ी बहुत उन्नति करके नये पाषाण-काल में आया था।

रहन-सहन और औजार—नये पाषाण-युग के लोग पुराने पाषाण-युग के लोगों की तरह पत्थर के बने औजार ही काम में लाते थे, लेकिन इनके औजार या हथियार पहले के लोगों की तरह भारी और बेढंगे न होते थे। इनके औजार सुन्दर तरीके से गढ़े, सुडौल, साफ, चिकने और सुन्दर होते थे। वे हथियारों को रगड़ कर चिकना कर के पालिश किया करते थे और उन पर लकड़ी की मूठें भी लगा लेते थे। वे नाव भी बनाने लगे थे।

खेती और पशु-पालन—ये लोग जंगल से कंद, मूल, फल आदि इकट्ठा करने के बजाय फल-फूलों को उगाना सीख गये थे। इन लोगों को इस बात का पता लग गया था कि खाने योग्य कंद-मूलों के बीज को यदि सँभाल कर रखा जाय और उचित समय पर बोया और सींचा

जाय तो सारी चीजें एक जगह पर रह कर प्राप्त की जा सकती हैं। यह जान लेने पर इन लोगों के जीवन में अन्तर आ गया। इनसे पहले लोग खाने की खोज में जङ्गल-जङ्गल फिरा करते थे, पर ये लोग अब ज्यादा इधर-उधर न भटक कर एक स्थान में रह कर खेती करने लगे। इस अन्तर के कारण पुराने पाषाण-युग के लोग भोजन इकट्ठा करनेवाले कहे जाते हैं और नये पाषाण-युगवाले भोजन पैदा करनेवाले; इसलिए अब मनुष्य केवल शिकारी न रह कर खेती करना भी सीख गया। इस तरह हम देखते हैं कि मनुष्य किसान बना और गाँव बसाना तथा घर बनाना शुरू कर दिया। खेती के लिए उसने अब कुछ जानवरों को पालतू बना कर पालना भी सीख लिया। बैल, गाय, भेड़, बकरी, कुत्ता, गदहा आदि जो पहले जङ्गली अवस्था में थे और मनुष्य से डर कर दूर रहा करते थे, अब पालतू बन जाने पर आदमी के सहायक बन गये। जानवरों से खेती में मदद लेने के साथ वे गाय और बकरी को दूहना भी सीख गये। इस तरह मनुष्य को अब पीने के लिए जानवरों से दूध भी मिलने लगा। इन जानवरों को वह बड़ी सावधानी से पालता था जिससे उनका वंश बढ़ता रहे।

विचित्र उद्योग-धंधे—वे लोग चाक पर मिट्टी के बर्तन बनाने की कला जान गये थे। वे कई प्रकार के बर्तन बना लेते थे और उन पर पालिश और नक्काशी भी किया

करते थे। बर्तनों को वे रंग भी लेते थे। धातुओं का उन्हें ज्यादा पता न था, लेकिन किसी तहर उनको सोने का पता चल गया था। वे बहुधा नदियों की रेत धो कर सोना इकट्ठा करते और उससे गहने बनाते थे।

रूई और ऊन के कपड़े बनाना भी वे सीख गये थे; इसलिए पेड़ों की छाल और चमड़े की खाल के अलावा वे रूई और ऊन के वस्त्र भी पहनने लगे थे। उनकी स्त्रियों को गहने पहनने का शौक था। वे हड्डी की चूड़ियाँ पहनतीं और कन्घों से बाल संवारती थीं।

समाज और धर्म—खेती-बारी करने से उनमें संपत्ति जमा करने का विचार भी पैदा हो गया था। वे अब कुटुम्ब बना कर रहते और उनका समाज श्रेणियों में बंटना शुरू हो गया था।

वे लोग परलोक-संबंधी विचार भी रखते थे। उनका विश्वास था कि मरने के बाद भी मनुष्य की आत्मा जीवित रहती है; इसलिए वे मुर्दे के साथ खाने-पीने का सामान और हथियार आदि रख देते थे। गाड़ने के अलावा वे मुर्दों को कभी-कभी जला भी दिया करते थे।

इन लोगों की भाषा आज कल के भारत के मुंडा, कोल, संथाल आदि आदिम जातियों की भाषा से मिलती थी। आसाम के खासी और अंडमन, नीकोबार द्वीपों की आदिम जातियों में आज भी वही भाषा बोली जाती है।

धातुयुग: सिंधुघाटी की संस्कृति—नये पाषाण-

युग के बाद ताँबा और लोहा आदि धातुओं का भी मनुष्यों को पता चल गया। कहते हैं, लोहे का प्रयोग पहले दक्षिण भारत में शुरू हुआ। लोहे से भी अब औजार बनाये जाने लगे। जब से लोहे का प्रयोग शुरू हुआ तभी से मनुष्य की सभ्यता के इतिहास में एक नये युग, लौह-युग का प्रारम्भ माना जाता है, किन्तु इस युग और पिछले नये पाषाण-युग की सभ्यता में बहुत अंतर नहीं हुआ सिवा इसके कि औजार लोहे से भी बनाये जाने लगे।

ताम्र-युग—दक्षिणी भारत में अगर लोहे का पता चला था तो उत्तरी भारत में नये पाषाण-युग के बाद ताँबे का पता चला और यहाँ के मनुष्य उसका प्रयोग करने लगे। ताँबे से वे औजार और बर्तन आदि बनाया करते थे। मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, पंजाब और सिंध में इस समय के बने ताँबे के औजार और बर्तन पाये गये हैं। ताँबे के प्रयोग से इस युग को ताँबे का युग या ताम्र-युग कहते हैं। *इस युग की सबसे उन्नत दशा के चिह्न हड़प्पा और मोहिंजोदड़ों की खोज में मिले हैं। मोहिंजोदड़ो सिंध में है और हड़प्पा रावी के किनारे माँटगोमरी जिले में एक गाँव है। मोहिंजोदड़ो हड़प्पा से ४५० मील की दूरी पर है।

सिंधु-घाटी की सभ्यता—मोहिंजोदड़ो और हड़प्पा में खुदाई करने से जो नगर मिले हैं वे बहुत ही बड़े और सुन्दर तरीके से बसाये गये मालूम होते हैं। इन स्थानों की खुदाई में मिली वस्तुओं से पता चलता है कि आज
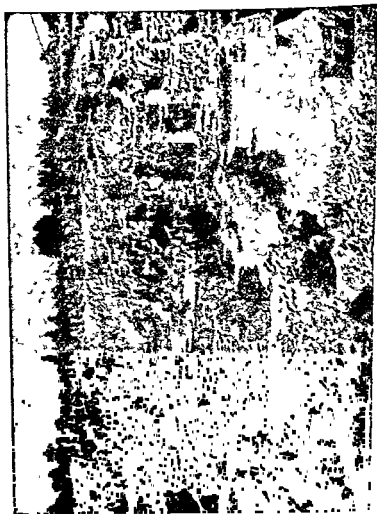
से हजारों वर्ष पहले सिंधु नदी की घाटी और मुलतान में एक उच्च सभ्यता का उदय हो चुका था। ये नगर पहले-पहल कब बने इसके बारे में ठीक अनुमान लगाना कठिन है, पर जो सबसे पुराना नगर मिला है उसे विद्वान् लोग कम-से-कम पाँच हजार वर्ष पुराना मानते हैं। योरप के विद्वानों का कहना है कि ऐसे सुन्दर नगर पुराने समय के मिस्र और बाबुल या बेबिलोनिया में भी नहीं थे।

मकानों की बनावट—मोहिंजोदड़ो और हड़प्पा के नगरों में जो मकान मिले हैं वे पक्की ईंटों से बने हुए थे। मकानों की दीवारें काफी ऊंची और मोटी होती थीं। बड़े मकान दो-तीन मंजिल तक के हुआ करते थे। मकानों के आगे बच्चों के खेलने के लिए आँगन भी बने होते थे। हवा के लिए उनमें शायद खिड़कियाँ हुआ करती थीं। मकानों में नहाने के लिए स्नान-घर भी बने होते थे। घरों में कुएं, स्नानागार और कचरा बहाने के लिए बहुधा नालियाँ बनी होती थीं।

धार्मिक स्नान और तालाब—इन नगरों में रहनेवाले कई तरह के देवी-देवताओं की पूजा किया करते थे; इसलिए नगर के खंडहरों में बड़े मकानों और मंदिर-जैसी इमारतों के चिन्ह भी मिले हैं। तीर्थ और पर्व के अवसर पर मोहिंजोदड़ो और हड़प्पा के लोग शायद विशेष प्रकार के कुंडों में नहाना पुण्य-कार्य समझते थे। ऐसे तालाब काफी बड़े होते थे जिसमें बहुत-से लोग एक साथ

चित्रकारी का नमूना

मुहर

मुहर

बर्तन

मोहिंजोदड़ो में प्राप्त कुछ प्राचीन वस्तुएँ

स्नान कर सकें। मोहिंजोदड़ो का विशाल स्नानागार १८० फुट लम्बा और १०८ फुट चौड़ा था और उसकी बाहरी दीवारें ८ फुट मोटी थीं। इसके मध्य में नहाने और तैरने के लिए जो तालाब बना था वह ३९ फुट लम्बा, २३ फुट चौड़ा और ५ फुट गहरा था। इस तालाब में उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी थीं।

बाजार—नगर में मकानों को एक-दूसरे से अलग करती हुई गलियाँ बनी थीं। यहाँ के लोग खेती और व्यापार करते थे। गेहूँ, जौ और खजूर उगाये जाते थे। बाजार सजे हुए होते थे। शहर के गंदे पानी को बहा ले जाने के लिए ढकी हुई नालियाँ थीं। यहाँ के लोग ताँबे के अलावा चाँदी, सोने, टीन और सीसा आदि धातुओं से परिचित थे।

उद्योग-धन्धे—वे लोग ताँबे के अस्त्र-शस्त्र तथा खाने-पकाने के लिए बर्तन बनाते थे। मिट्टी के बर्तन भी बनते थे। इन बर्तनों को वे रंग कर सजाना जानते थे।

सोना-चाँदी आदि से वे लोग गहने बनाया करते थे। पत्थर, हड्डी और हाथी-दाँत के भी गहने बनते थे। गहनें को देखने से मालूम होता है कि यहाँ की स्त्रियाँ गहनें बहुत पसंद करती थीं।

वे लोग ऊन और रूई से कपड़े बनाते थे। यहाँ के पुरुष नीचे धोती पहनते और ऊपर से शाल ओढ़ते थे। स्त्रियाँ धोती या साड़ी पहनती थीं। पुरुष दाढ़ी रखते थे। गलमुच्छे रखने का भी उन्हें शौक था।

खेतिहर होने से वे लोग कई प्रकार के पशु पालते थे। गाय, भैंस, ऊंट, हाथी, सूअर, भेड़ और कुत्ते आदि उनके पालतू जानवर थे।

लेखन-कला—यहाँ के लोग लिखने की कला भी जानते थे, परन्तु छोटी-छोटी तख्तियों पर उनके जो लेख मिले हैं उन्हें अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है।

धर्म—उन लोगों के अपने देवी-देवता थे जिन्हें वे शायद मंदिर में स्थापित कर पूजा करते थे। खुदाई में मिली मिट्टी और धातु की प्रतिमाओं से मालूम होता है कि वे एक देवी, महामाया या मातृदेवी और तीन मुखवाले शिव के जैसे एक पुरुष देवता की पूजा किया करते थे। शिव को वे लिंग के रूप में भी पूजते थे। इस शिव-रूप के देवता की वे एक योगी के और पशुओं के देवता अथवा पशुपति के रूप में भी पूजा किया करते थे। मोहिंजोदड़ो में योगी के रूपमें शिव का एक चित्र मिला है जिसके चारों ओर पशु इकट्ठे हैं। इनके अलावा वे कुछ पेड़ और पशु, जैसे—सिंह, बैल, भैंसा, हाथी और नाग आदि की भी पूजा करते थे। 'स्वस्तिक' के चिह्न को शायद वे शुभ मानते थे।

वे लोग प्रायः मुर्दों को जलाते और उनकी राख तथा हड्डियों को गाड़ दिया करते थे।

इन नगरों की उच्च सभ्यता को देख कर योरप के विद्वान् भी आश्चर्य करते हैं, किंतु इन नगरों के रहनेवाले कौन थे इस पर विद्वानों में एक राय नहीं हो सकती है, लेकिन

निश्चित रूप से अभी सही-सही पता नहीं लगाया जा सका है। बहुत-से विद्वान् सिन्धु-घाटीवालों को द्रविड़ और कुछ आर्य जाति का बतलाते हैं। अधिकतर विद्वानों का यह अनुमान है कि सिन्धु-संस्कृति ऋग्वेद से पहले की या उसी समय की है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. पुराने और नये पाषाण-युग में क्या अन्तर है ?
२. खेती करना और पशु पालना मनुष्य ने कब और कैसे सीखा ?
३. मोहिंजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से हमारे देश के बारे में क्या-क्या हाल मालूम हुए ?

अध्याय ४

भारत के आर्य : वैदिक काल

आर्य जाति—हमारे आदि-पूर्वज आर्य कहलाते थे। आर्य शब्द का अर्थ 'श्रेष्ठ' होता है। आर्यों के आदि—मूल-पुरुष का नाम हमारे प्राचीन पुराण तथा महाभारत आदि ग्रंथों में मनु ने दिया है; इसलिए आर्य जाति को मनु की संतान भी कहते हैं।

आर्यों का आदि देश—भारत की आर्य-जाति के मूल देश या निवास-स्थान के बारे में विद्वानों में एक मत नहीं है। कुछ विद्वानों का कहना है कि आर्य लोग पहले मध्य-एशिया में रहते थे और वहीं से वे योरप, एशिया और भारत में फैले। कुछ लोग आर्यों का आदि-स्थान योरप के हंगरी, आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया

प्रांत में मानते हैं और कुछ का तो यह भी कहना है कि आर्य लोग मूलतः उत्तरी ध्रुव में रहा करते थे, पर अधिकांश विद्वानों की यही राय है कि आर्य लोग पहले मध्य-एशिया में रहते थे और वहीं से चल कर वे दूसरे देशों में जा बसे। अतः इस मत के लोगों का अनुमान है कि भारत में भी वहीं से आर्यों के एक के बाद एक कर के अनेक दल हिंदूकुश के दर्रों से हो कर पंजाब में आये और वहीं रहने लगे। फिर वे लोग सारे भारत में फैल गये।

सप्त-सिंधव—लेकिन भारत के आर्यों का बाहर से आना अब कुछ विद्वानों को संदेहपूर्ण मालूम होने लगा है। हमारे आर्य पूर्वजों के आदि-ग्रंथ वेदों से भी यह मालूम पड़ता है कि आर्य लोग बाहर से शायद ही आये हों। वेदों में कहीं भी आर्यों ने किसी ऐसे स्थान का उल्लेख नहीं किया है जिसमें वे पहले रहते थे। स्वाभाविक बात है कि हम मूलतः जहाँ के रहनेवाले होते हैं उस स्थान को एकदम भुला नहीं दिया करते; इसलिए हमको इस बात पर संदेह है कि उनका आदि-स्थान कोई दूसरा रहा हो। दूसरा होता तो वे कुछ तो वहाँ का वर्णन जरूर ही करते।

सब अपनी मातृभूमि को बहुत प्यार करते हैं और उसके गीत गाया करते हैं। हमारा देश भारत है; इसलिए हम उसके गीत गाते हैं। इसी तरह वैदिक आर्य अपनी जिस मातृभूमि और देश का गीत गाया करते थे उसका नाम वेदों में सप्त-सिंधव प्रदेश दिया है। यह

सप्त-सिंधव प्रदेश सिंधु और उसकी छः सहायक नदियों का प्रदेश है। श्रीसम्पूर्णानंद ने वेदों के अध्ययन से यह सिद्ध किया है कि सप्त-सिंधव प्रदेश के पहाड़, नदी-नाले और भूमि आर्यों को बहुत प्यारी थी। इन सबका वे बहुत गुण-गान किया करते थे, जैसा आजकल हम अपने भारत की भूमि, हिमालय पहाड़ और गंगा, यमुना, कृष्णा, कावेरी आदि नदियों की प्रशंसा कर के प्रसन्न हुआ करते हैं। अतः इसी स्थान को वे अपना प्यारा देश और अपनी मातृभूमि मानते थे। यहीं पर उन्होंने अपनी महान सभ्यता का विकास किया था। जो इतिहास में वैदिक काल की सभ्यता के नाम से प्रसिद्ध है।

वेद—वैदिक आर्यों का हाल हमें वेदों से मालूम होता है। ये वेद असल में आर्य जाति के धर्मग्रन्थ हैं। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद सबसे पुराना है। ऋग्वेद की रचना योरप तथा भारत के अधिकतर विद्वानों के मतानुसार ईसा से ढाई या तीन हजार वर्ष पहले हुई होगी, लेकिन कुछ भारतीय विद्वानों ने वेद-मंत्रों के आधार पर यह बतलाया है कि ऋग्वेद के कुछ मंत्र दस हजार वर्ष से अठारह हजार वर्ष तक पुराने हैं। अगर भारतीय विद्वानों का कथन सही हो तो हमारी वैदिक काल की सभ्यता कम-से-कम अठारह हजार वर्ष पुरानी पडती है। इस बात को अभी सब विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है, फिर भी इसमें तो कोई संदेह नहीं कि दुनिया की सबसे

पुरानी पुस्तक ऋग्वेद ही है; इसलिए इतना तो कह ही सकते हैं कि भारत की वैदिक सभ्यता दुनिया की बहुत पुरानी सभ्यताओं में से है।

वेदों के भाग—प्रत्येक वेद के तीन भाग हैं। १. संहिता, २. ब्राह्मण और आरण्यक तथा ३. उपनिषद्। वेद के मंत्रवाले भाग को संहिता कहते हैं। ब्राह्मण और आरण्यक में वेद-मंत्रों को समझाया गया है और यज्ञ करने के तरीक़े बतलाये गये हैं। उपनिषद् में ईश्वर, जीव और जगत् के बारे में गूढ़ विचार दिये गये हैं। उपनिषदों को वेदांत भी कहते हैं।

वेदों का अध्ययन—प्राचीनकाल में शिष्य गुरु के पास रह कर वेद-मंत्रों को कंठ कर लिया करते थे। वेद-मंत्र देवताओं की स्तुति में रचे गये हैं। इनके रचनेवाले ऋषि और ऋषिकाएँ थीं।

आर्यों और अनार्यों का युद्ध—ऋग्वेद में आर्यों और अनार्यों के युद्ध का वर्णन भी मिलता है। ये अनार्य संभवतः द्रविड़ जाति के लोग थे। आर्य गोरे और सुन्दर तथा अनार्य काले और कुरूप थे। आर्यों और अनार्यों के देवी-देवता भी पहले अलग-अलग थे; इसलिए आर्य लोग अनार्यों को अच्छा नहीं समझते थे और घृणा से उन्हें दस्यु या गुलाम कहा करते थे। अनार्य लोग भी सभ्य थे और खेती-बारी तथा व्यापार किया करते थे। युद्ध की कला में भी निपुण थे। शासन के लिए

उनमें राजा हुआ करता था। यह राजा पत्थर के बने मजबूत किलों में रहता था। युद्ध के समय राजा सेनापति बन कर आगे-आगे चलता था।

इन शक्तिशाली अनार्यों से आर्यों को बहुत-से युद्ध करने पड़े। आर्यों के राजा दिवोदास और उसके लड़के सुदास को अनार्यों से काफी लोहा लेना पड़ा था, लेकिन अन्त में आर्यों ने अनार्यों को हरा दिया और उनके मजबूत किले या दुर्ग तोड़-फोड़ डाले। इससे विवश हो कर बहुत-से अनार्य तो आर्यों के धर्म और विचार को अपना कर आर्यों के मित्र बन गये, लेकिन जिन्होंने ऐसा नहीं किया उनको आर्यों ने अपना दास बना लिया। इस प्रकार कुछ अनार्य अब आर्यों के दास बन कर रहने लगे, पर कुछ दक्षिण की तरफ भाग गये और वहाँ अपना राज्य बना कर रहने लगे। दक्षिण के द्रविड़ लोग इन्हीं अनार्यों की सन्तानों में से हैं।

आर्यों और अनार्यों में मेल—इस लड़ाई-झगड़े के बाद धीरे-धीरे आर्य और अनार्य दोनों जातियों में हेल-मेल बढ़ चला। फलतः दोनों एक ही आर्य-धर्म तथा विचारों को मानने लगे और एक ही समाज के अंग हो गये।

देवासुर-संग्राम—समय बीतने पर आर्य जाति भी कई शाखाओं में बँट गयी। इनमें से दो मुख्य थीं—एक, इंद्र आदि देवों की और दूसरी, असुर (जो देव नहीं हैं, अर्थात् देवों के शत्रु) की उपासना करती थी। इन दोनों शाखाओं

में धीरे-धीरे धार्मिक मतभेद बढ़ता गया और अन्त में इन दोनों में घोर युद्ध हुआ जिसका वर्णन शास्त्रों में देवासुर-संग्राम के नाम से किया गया है। इसमें देवों के उपासक विजयी हुए और असुरों के उपासक हार गये। हारने पर ये इस देश को छोड़ कर चल दिये और फारस में जा कर बसे। चूँकि यह भी एक आर्य जाति की ही शाखा थी; इसलिए इसके नाम पर फारस का नाम ईरान पड़ गया। आज तक आर्य-धर्म तथा भाषा के अनेक शब्द पारसियों के धर्म तथा उनकी भाषा के शब्दों से मिलते-जुलते हैं, पर इसके विपरीत कुछ विद्वान यह मानते हैं कि देवों और असुरों का संघर्ष पहले ईरान में उठा था। अतः इस झगड़े के कारण तब देवों के उपासक आर्य वहाँ से भारत चले आये। यह भी समझा जाता है कि देवासुर-संग्राम शायद आर्यों और असीरियनों के बीच हुआ था।

आर्यों का विस्तार—हम आपको बतला आये हैं कि वैदिक आर्य पहले सप्त-सिंधव और पंजाब में रहते थे, लेकिन जब उनकी संख्या बढ़ चली तो उन्हें अधिक जगह की जरूरत होने लगी, इसलिए वे गंगा और यमुना के प्रदेश में फैलते गये। इस फैलाव के परिणाम से आर्य कुछ समय में सारे उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश और पश्चिम में गुजरात तथा मालवा तक बस गये, परन्तु विंध्याचल के कारण रास्ते में रुकावट होने से आर्य लोग जल्दी दक्षिण-भारत में नहीं पहुँच सके। महाकाव्य-काल में

राम सबसे पहले आर्य-सभ्यता को दक्षिण में ले गये। उत्तरी भारत में बस जाने पर आर्यों ने कुरुक्षेत्र, काशी, कोशल और विदेह आदि में अपने विशाल साम्राज्य स्थापित किये।

विदेशों में सभ्यता का प्रचार—आर्य बड़े साहसी और उत्साही लोग थे। वे व्यापार आदि के लिए दूर-दूर देशों में आया-जाया करते थे। आर्यों में जो जाति व्यापार का काम करती थी उसे पणि कहते थे। कुछ लोग यह मानते हैं कि ये पणि लोग समुद्र के रास्ते पर्शिया (फारस या ईरान) की खाड़ी, अरब और लाल सागर के तट तक व्यापार किया करते थे। पणियों के इस आवागमन और व्यापार के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति तथा विचार आदि भी विदेशों में पहुँचे। अतः कुछ विद्वानों का अनुमान है कि मेसोपोटामिया की सुमेरियन संस्कृति और काल्डियन संस्कृति तथा प्राचीन मिस्र की सभ्यता पर आर्य संस्कृति का प्रभाव पड़ा था। मिस्र के बारे में यह कहा जाता है कि वहाँ के प्राचीन निवासी और भारत के आर्य दोनों एक-से देवी-देवताओं की पूजा करते थे। आर्यों की भाँति मिस्रवाले सूर्य, ऊषा, विष्णु तथा हर की पूजा किया करते थे। बहुत-से पशुओं और बैल का मिस्र-वासी भी आदर करते थे। साँढ़ उनका बहुत बड़ा देवता था।

पणि लोगों के इन कार्यों को यद्यपि अभी विवादग्रस्त माना जाता है, किन्तु इतना तो सभी मानते हैं कि अशोक के समय से ले कर मध्यकालीन चोलों के समय तक

भारतवासी विदेशों में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रचार करते रहे हैं।

'अतः हम कह सकते हैं कि आर्य जाति एक महान् जाति थी जिसका ध्येय केवल अपनी उन्नति करना न था, बल्कि सारे संसार को सभ्यता और संस्कृति का प्रकाश पहुँचा कर उन्नति करना था। उन्हें केवल अपने सुख और दुःख की चिन्ता न थी, वरन् सारे संसार को सुखी और समृद्ध बनाना और जीवमात्र की सेवा करना ही उनका लक्ष्य और ध्येय था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. सप्त-सिंधव प्रदेश के बारे में आप क्या जानते हैं ?
२. वेद से आप क्या समझते हैं ? वेद कितने हैं ?
३. पणि लोगों ने सभ्यता के प्रचार में क्या-क्या काम किया ?

अध्याय ५

वैदिक काल का समाज

वैदिक आर्यों का जीवन—वेदों के अध्ययन से हमें वैदिक आर्यों के जीवन और रहन-सहन का पता लगता है। उनका रहन-सहन बहुत सीधा-सादा था। वे गाँवों में लकड़ी के मकानों या झोपड़ों में रहते थे। घर में जो सबसे बड़ा या वृद्ध होता था वही घर का मालिक और श्रेष्ठ माना जाता था। उनका गृहस्थ-जीवन सुखद और सुन्दर था। पिता और माता दोनों का घर में बहुत आदर और मान था।

विवाह—आर्य लोग बहुधा एक ही विवाह करते थे। लड़के-लड़कियाँ अपनी पसन्द से विवाह करते थे। छोटी उम्र में विवाह नहीं होता था। पति के मरने पर स्त्री दूसरा विवाह नहीं कर सकती थी, किन्तु कुछ विद्वानों का खयाल है कि विधवाओं को पुनर्विवाह करने की कदाचित् आज्ञा थी। सामान्यतः विवाह को एक धार्मिक और अटूट सम्बन्ध माना जाता था। स्त्री-पुरुष का विवाहित जीवन प्रेमपूर्ण होता था। स्त्री घर की स्वामिनी या गृह-लक्ष्मी मानी जाती थी। धर्म और गृहस्थी के हर एक काम में वह अपने पति का हाथ बंटाती थी।

स्त्रियों की शिक्षा—स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी होती थीं। पति के साथ यज्ञ और सार्वजनिक सभाओं में भाग लेती थीं। पुरुषों की तरह विद्या और ज्ञान के बल से बहुत-सी स्त्रियों ने ऋषि-पद भी प्राप्त कर लिया था। इन स्त्रियों को ऋषिकाएं कहते हैं। बहुत-से वेद-मन्त्र इन ऋषिकाओं के बनाये हुए हैं। इन विदुषी स्त्रियों में श्रद्धा, लोपामुद्रा, घोषा, अपाला आदि के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं।

गृहस्थी के काम में भी वैदिक स्त्रियाँ बहुत कुशल थीं। घर का चौका-बर्तन से ले कर सीने-पिरोने आदि तक का सारा काम वे अपने हाथ से करती थीं। इन कामों को करते हुए वे खुशी के साथ गीत भी गाती जाती थीं। बेटियाँ अपनी माताओं को घर के काम-काज में मदद देती थीं और कुएं से पानी खींच लाती थीं। प्रातः उठ कर गाय को

दूहने का काम भी वे ही करती थीं। निःसन्देह उस समय की स्त्रियाँ विदुषी, पतिभक्ता और कुशल गृह-स्वामिनी हुआ करती थीं।

खान-पान और वस्त्र-आभूषण—आर्य लोगों का भोजन सादा-स्वास्थ्यप्रद होता था। वे ज्यादातर चावल और जौ की रोटी, दाल, घी, मक्खन, खीर, दूध, मठा, फल और तरकारी आदि खाते थे। वे एक प्रकार का रस भी पीते थे जिसका नाम सोमरस था। यह सोमरस जड़ी-बूटियों से तैयार किया जाता था, लेकिन शराब पीना वे बुरा और पाप-कर्म समझते थे।

स्त्री और पुरुष दोनों सुन्दर और रंग-बिरंगे कपड़े पहनते थे। पुरुष धोती पहनते थे और बदन पर चद्दर लपेट लिया करते थे। स्त्रियाँ साड़ी की तरह की पोशाक पहनती थीं। और ऊपर से चादर ओढ़ लेती थीं।

बालों को सुन्दर तरीके से सजा कर रखा जाता था। पुरुष दाढ़ी कम रखा करते थे। आज की तरह ही पुरुष सिर के बीच में चोटी रखा करते थे।

गहनों का शौक स्त्री और पुरुष दोनों को था। सोने के हार, कड़े और कुंडल स्त्री-पुरुष दोनों पहनते थे।

खेल-तमाशे—आर्य लोग खेल-तमाशों के बड़े शौकीन थे। लड़के-लड़कियों को नाचना तथा गाना सिखलाया जाता था। वे रथों में बैठ कर दौड़ लगाना तथा घुड़दौड़ बहुत पसन्द करते थे। जुआ भी खेला जाता था, लेकिन

प्रौढ़ लोग ही जुए के खेल में शामिल होते थे। बच्चों और युवकों को जुआ खेलने की मनाही थी। जुए के परिणाम-स्वरूप कभी-कभी लोग बरबाद हो जाते थे। उत्सवों के मौकों पर खूब गाना-बजाना होता था।

आचार-विचार—खेल-कूद के साथ-साथ आर्य लोग अपने कर्त्तव्य-पालन में बहुत दृढ़ होते थे। वे अतिथियों का बहुत सत्कार करते थे।

सदाचार का वे बहुत खयाल रखते थे। झूठ बोलना, चोरी करना और किसी दीन-दुःखी को सताना वे पाप समझते थे। वे अपने बच्चों की शिक्षा का बहुत खयाल रखते थे। बच्चे गुरु के घर मे जा कर, २५वर्ष तक ब्रह्मचारी रह कर नियम से विद्या पढ़ते थे। अध्ययन को पूरा करने के बाद ही वे विवाह कर के घर में रह सकते थे।

उद्योग-धंधे और व्यापार—वैदिक आर्य लोग ज्यादातर खेती का काम करते थे। वे गाय, बैल, घोड़ा, भेड़, बकरी, गधा, कुत्ता आदि पशुओं को पालते थे। गाय का वे आदर करते और उसे अघन्या (न मारने योग्य) मानते थे।

खेतों की जुताई करने के लिए हल में बैल जोते जाते थे जिस तरह आज भी जोते जाते हैं। गेहूँ, जौ, धान, मक्का आदि अनेक प्रकार के अन्न पैदा किये जाते थे। खेतों को सींचने के लिए वे कुएं और छोटी-छोटी नहरों से काम लेते थे। लोहे, तांबे और पीतल के बर्तन बनाये जाते थे। इनके बनानेवाले लोहार कहलाते थे। इसी तरह गहने बनानेवाले

थे जिन्हें सुनार कहते थे। जुलाहे कपड़े बुनते थे। इसी तरह दूसरी तरह के धंधे करनेवाले भी थे—जैसे चमड़े की चीजें बनानेवाले और चटाइयाँ बुननेवाले आदि।

युद्ध के लिए अस्त्र और व्यापार के लिए जहाज, नाव, रथ, गाड़ियाँ आदि बनायी जाती थीं। जहाजों में बैठ कर वे नदियों की राह एक जगह से दूसरी जगह और समुद्र के मार्ग से एक देश से दूसरे देश में दूर-दूर तक व्यापार करने जाते थे। पणियों के वर्णन में आप पढ़ ही चुके हैं कि वे अरब और मिस्र देश तक व्यापार किया करते थे।

वैदिक धर्म—वैदिक आर्य प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को देवता मान कर पूजा करते थे, किन्तु बाद में आर्य ऋषियों ने यह अनुभव किया कि ये विभिन्न शक्तियाँ असल में एक ही परम-शक्ति अथवा ईश्वर के अलग-अलग रूप हैं। इस प्रकार एक ईश्वर की कल्पना कर ली गयी। सारे संसार को वे इसी ईश्वरीय शक्ति से व्याप्त समझते थे। प्रकृति के हर एक रूप को वे ईश्वर का ही रूप मानते थे। आर्य लोग पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चंद्र, अग्नि, इन्द्र, रुद्र, वायु और ऊषा आदि देवी-देवताओं की पूजा करते और उनकी स्तुति गाया करते थे। देवों के अतिरिक्त आर्य पितरों की भी पूजा करते और उन्हें तर्पण देते थे। धीरे-धीरे आर्य लोगों ने विभिन्न देवताओं की जगह एक सर्वशक्तिमान ईश्वर की कल्पना की जिसे वे परमब्रह्म कहते थे।

वैदिक काल में आर्यावर्त
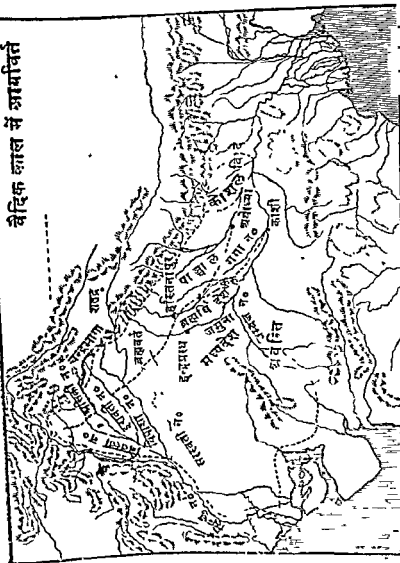
आर्य लोग प्रत्येक प्राणी को, चाहे मनुष्य हो अथवा पशु, ईश्वर के अंश से पूर्ण मानते थे इसलिए; वे सब प्राणियों का आदर करते और सबके कल्याण के लिए ईश्वर से इस प्रकार प्रार्थना किया करते थे—

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

अर्थात् सब सुखी हों, नीरोग हों, सब भलाई देखें, किसी को दुःख न हो।

देवी-देवताओं को संतुष्ट करने के लिए और उनसे वर माँगने के लिए मंत्रों का पाठ और यज्ञ किया जाता था। यज्ञों के लिए नियम बने हुए थे। यज्ञ के समय अन्न, घी इत्यादि का आग में होम किया जाता था। किसी-किसी यज्ञ में पशु की बलि भी दी जाती थी। आर्य लोगों का विश्वास था कि धर्म-कर्म करने से परलोक में स्वर्ग मिलता है और पाप तथा दुराचार करने से नरक में कष्ट भोगना पड़ता है।

वैदिक काल में शासन—वैदिक आर्यों के सामाजिक और राजनीतिक जीवन का 'कुटुंब' मुख्य अंग था। कुटुम्ब के सभी सदस्य, पुत्र, पुत्रियाँ, भाई-बहन, स्त्री, माता आदि एक ही गृह (घर) में रहा करते थे। कुटुंब का मुखिया पिता या ज्येष्ठ भाई होता था जिसे कुलप कहते थे। कुटुंब में तीन-चार पीढ़ियों तक के स्त्री-पुरुष एक साथ रहा करते थे; इसलिए वैदिक गृह काफ़ी बड़े हुआ करते थे जिसमें उसके सारे आदमी और पशु आदि रह सकें।

जिस स्थान पर कई एक कुटुम्ब मिल कर रहते थे, वह ग्राम (गाँव) कहलाता था। बाहरी शत्रुओं से युद्ध करने के समय कई ग्राम मिल कर एक दल बना लेते थे। इस प्रकार के दल मिल कर 'विश' कहलाते थे। अनेक 'विशों' के समुदाय को 'जन' तथा देश या राज्य को 'राष्ट्र' कहते थे।

राज्य के शासन एवं जनों की रक्षा के लिए एक राजा होता था। वह मनमानी नहीं कर सकता था। राजा जनों का रक्षक अथवा गोप्ता कहलाता था। उसे पुरोहित तथा मंत्रियों की सलाह से काम करना पड़ता था। राजा का मुख्य कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा और पालन करना था। पुरोहित राजा के घर में धार्मिक कृत्य कराता और राजकाज में मदद देता था। वह राजा के साथ युद्ध में जाता और विजय के लिए देवता से प्रार्थना किया करता था। राज्य के मामलों में जनता को भी राय देने का अधिकार था; इसलिए उस समय सभा और समितियाँ हुआ करती थीं जिसमें जनता के प्रतिनिधि बैठ कर राज्य के मामलों पर बहस करते और राजा को सलाह देते थे। उनकी सलाह के विरुद्ध चलना उचित नहीं समझा जाता था। प्रजा की इच्छा के विरुद्ध जाने पर उसे गद्दी से हटाया भी जा सकता था। अतः वैदिक काल का राजा निरंकुश शासक न होता था।

पूरे शासन की देख-रेख राजा को करनी पड़ती थी। लोगों के मुकदमे वही तय करता था। वह चोर लुटेरों और बदमाशों को कठोर दंड देता था। कर्ज का कानून

कड़ा था। कर्ज न चुका सकने पर कर्जदार को साहूकार की गुलामी तक करनी पड़ती थी। राजा हर प्रकार से देश में शांति बनाये रखता था। युद्ध के समय राजा सेनापति का भी काम करता था। सेना में क्षत्रिय ही ज्यादा भर्ती किये जाते थे। राजा तथा उच्च वर्ग के क्षत्रिय-वीर रथों पर चढ़ कर और साधारण सैनिक पैदल लड़ते थे।

वर्ण या जाति-विभाग—शुरू में आर्यों में कोई जातिभेद न था। सब आर्य एक ही 'आर्यकुल' के माने जाते थे, किंतु ऋग्वेद के अन्त समय तक आर्य लोग चार वर्णों में बंट गये। यह समय इतिहास में उत्तर वैदिक काल कहलाता है। जातियों का बंटवारा आरम्भ में गुण और कर्म पर रखा गया था न कि जन्म पर। जो विद्या पढ़ने में रुचि रखता वह ब्राह्मण और जो लड़ने-भिड़ने का शौक रखता वह क्षत्रिय होता था। इसी तरह जो व्यापार और खेती का शौक दिखलाता वह वैश्य और जो केवल दूसरों की सेवा कर के पेट पालता वह दास या शूद्र होता था। युद्ध में पकड़े गये बंदियों को भी बहुधा दास बना लिया जाता था।

धीरे-धीरे कर्म का आधार जाता रहा और जन्म से ही वर्ण या जातियाँ बनने लगीं। इसका मतलब यह था कि जो जिस घर में जन्म लेता उसका वही वर्ण माना जाता था; अर्थात् ब्राह्मण के घर जन्म लेनेवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय के घर पैदा होनेवाला क्षत्रिय, वैश्य के घर पैदा होनेवाला

वैश्य और शूद्र के घर पैदा होनेवाला शूद्र कहलाने लगा। इन वर्णों में ब्राह्मण का स्थान सबसे ऊंचा था। उनके बाद क्षत्रिय थे, क्षत्रियों के बाद वैश्य और सबसे नीचे दर्जे में शूद्र रखे गये; किंतु वैदिक काल में आजकल की तरह इन चार वर्णों में आपस में खान-पान और विवाह आदि की रोक-टोक न थी, परन्तु शूद्रों के साथ विवाह-संबंध करना अच्छा नहीं समझा जाता था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. वैदिक काल में लोगों के रहन-सहन और आचार-विचार के बारे में आप क्या जानते हैं?
२. वैदिक काल के राजा कैसे होते थे?
३. 'वर्ण' से आप क्या समझते हैं?

अध्याय ६

रामायण और महाभारत-काल

रामायण और महाभारत—रामायण और महाभारत भारत के दो प्राचीन महाकाव्य हैं। रामायण के लिखने-वाले वाल्मीकि ऋषि और महाभारत के वेदव्यास थे। इन दो ग्रंथों का रचना-काल ठीक से निर्धारित नहीं हो सका है। साधारणतया यह समझा जाता है कि वे लगभग ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व रचे गये थे। रामायण में अयोध्या के महाराज दशरथ के पुत्र राम का जीवन-चरित्र गाया गया है। अपने सुन्दर कर्मों और देव-गुणों के

कारण राम आज भी हिन्दुओं में मर्यादा-पुरुषोत्तम या भगवान मान कर पूजे जाते हैं।

इसी तरह महाभारत के सबसे मुख्य पात्र कृष्ण हैं। महाभारत की सारी लड़ाई का संचालन उन्हीं के हाथ में था। अपने देव-गुणों और उच्च चरित्र के कारण वे भी राम की तरह भगवान के रूप में अभी तक पूजे जाते हैं।

रामायण और महाभारत-काल के बारे में विद्वानों में बहुत मतभेद है। श्री वैद्य जैसे भारतीय विद्वानों ने ज्योतिष से यह सिद्ध किया है कि महाभारत का युद्ध ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व हुआ था। महाभारत से कम-से कम पाँच सौ वर्ष पूर्व राम का अवतार हो चुका था, किन्तु योरप के विद्वान् महाभारत के युद्ध की तिथि ईसा से ग्यारह सौ वर्ष पूर्व मानते हैं और राम के अवतार का समय महाभारत-युद्ध से पाँच सौ वर्ष अर्थात् ईसा के एक हजार छः सौ वर्ष पूर्व के लगभग बताते हैं। इससे सिद्ध है कि रामायण महाभारत से बहुत पुराना है। निश्चित रूप से रामायण और महाभारत के युग की तिथि अभी तक तय नहीं हो पायी है, लेकिन इतना सभी मानते हैं कि रामायण-काल महाभारत से पहले का है और ये दोनों युग हमारे इतिहास के अत्यन्त प्राचीन युगों में से हैं।

रामायण की कथा—कोशल का राज्य आर्यों का एक प्रसिद्ध राज्य था। इसकी राजधानी अयोध्या नगरी थी जिसे साकेत भी कहते थे। यहाँ पर इक्ष्वाकु वंश के आर्य

क्षत्रिय राज्य करते थे। इस वंश में हरिश्चन्द्र-जैसे सत्य-वादी, सगर-जैसे वीर और दिलीप तथा रघु-जैसे प्रतापी राजा हुए जिनके यश आज भी गाये जाते हैं। इक्ष्वाकु-वंश रघु के नाम पर रघुकुल के नाम से विख्यात हुआ। इसी रघुकुल में एक प्रतापी महाराज दशरथ हुए। उनके तीन रानियाँ थीं—कौशिल्या, सुमित्रा और कैकेयी। इन तीन रानियों से राजा दशरथ के चार पुत्र हुए। बड़ी महारानी कौशल्या से रामचन्द्र, कैकेयी से भरत तथा सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न।

बड़े होने पर राम का विवाह मिथिला के यशस्वी महाराज जनक की पुत्री सीता से हुआ। राजा दशरथ अब बूढ़े हो चले थे; इसलिए उन्होंने राम को राज्य देने का निश्चय किया। इस निश्चय को भरत की माता कैकेयी ने पूरा नहीं होने दिया। उसने एक बार दशरथ से दो वर देने का वादा ले रखा था। अतः मौका देख कर उसने अब राजा से वे दोनों वर माँगे। एक वर में उसने राम को १४ वर्ष का वनवास माँगा और दूसरे में अपने बेटे भरत के लिए राजपद। वचन के पक्के महाराज दशरथ ने हृदय थाम कर दोनों वर दे डाले।

पिता के वचनों का पालन करने के लिए राम राजपाट छोड़ कर, अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ ले कर वन चले गये। भरत इस समय अपने ननिहाल में थे। राम के वन चले जाने से दुःखी हो कर दशरथ ज्याद
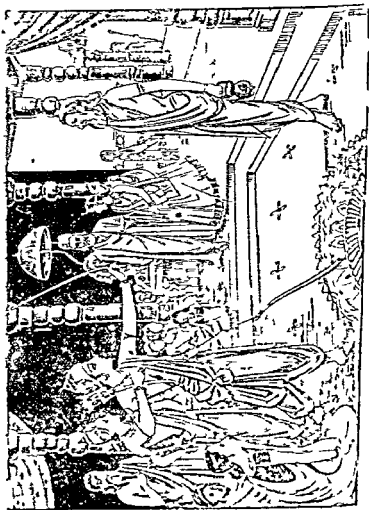
दिन न जी सके। वे शीघ्र ही परलोक सिधार गये।

ननिहाल से लौटने पर भरत को जब राम के वनगमन का हाल मालूम हुआ तो वे बहुत दुःखी हुए। वे तुरंत वन में जा कर राम से मिले और उनसे लौट चलने का आग्रह किया, परन्तु वचन के धनी राम ने वनवास की अवधि (१४वर्ष) से पहले लौटने से इनकार कर दिया। भरत निराश हो कर अयोध्या लौट आये, लेकिन राम की निशानी के रूप में उनकी खड़ाऊं साथ लेते आये। भ्रातृ-प्रेम का यह कितना ऊँचा उदाहरण है ?,

राम अपनी पत्नी और भाई लक्ष्मण के साथ दक्षिण के जंगलों की तरफ चले गये। दक्षिण में इस समय कुछ अनार्य और जंगली राक्षसी जातियों का राज्य था। इनमें सबसे अधिक बलवान् लंका का राजा रावण था। एक समय जब सीताजी वन में, अपनी कुटी में, अकेली थीं रावण छल कर के उनको हर ले गया। इस पर राम ने रावण से लड़ने के लिए दक्षिण की जंगली जातियों की सेना तैयार की। वानर नाम की जंगली जाति के राजा सुग्रीव ने राम को हर तरह से मदद पहुँचायी। सुग्रीव के साथी हनूमान, नल, नील जांबवान आदि ने भी राम की बहुत मदद की। हनूमान तो राम के बहुत ही बड़े सहायक और भक्त सिद्ध हुए। इसी कारण राम के साथ हनूमान की महिमा भी भारत में सर्वत्र गायी जाती है। हनूमान-जैसे त्यागी और सच्चे सेवक तथा भक्त बहुत कम हुआ करते हैं।

सुग्रीव और हनूमान आदि की मदद पा कर राम ने लंका पर चढ़ाई कर दी। रावण कोई कमजोर राजा न था। लड़ाई बहुत जोरों से हुई, लेकिन रावण का पक्ष सही न होने से वह हार गया। सत्य तथा धर्म के पथ पर चलने से राम विजयी हुए। रावण हारा ही नहीं, बल्कि अपने सारे परिवार और लाखों राक्षसों सहित मार डाला गया।

रावण के मरने पर राम ने लंका का राज्य उसीके भाई विभीषण को दे दिया और स्वयं सीता को ले कर अयोध्या लौट आये। राम आर्य थे और आर्यों का यह सिद्धांत था कि वे दूसरे की वस्तुओं का अपहरण नहीं करते थे; इसलिए राम ने लंका को जीतने पर भी उसे अपने अधिकार मे न रखा और रावण के ही भाई को वहाँ का राजा बनाया। दक्षिण के अनार्यों और जंगली जातियों पर उनके धर्मपूर्ण कार्यों का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। फलतः उन लोगों ने आसुरी-वृत्ति छोड़ कर आर्य-धर्म और संस्कृति को अपना लिया। राम की यह सबसे बड़ी विजय थी। इस प्रकार राम के प्रयत्न और धर्म-विजय से उत्तरी तथा दक्षिणी भारत तब से एक ही आर्य-संस्कृति मे बंध गये। लंका के विजेता राम जब अयोध्या पहुँचे तो भरत ने जनता के सहित धूम-धाम से राम, सीता और लक्ष्मण का स्वागत किया और उनका राज्य उन्हें सौंप दिया।

राम ने बहुत समय तक अयोध्या में राज्य किया। उनके राज्य मे प्रजा को न कोई दु:ख था न कष्ट। सब

लोग सुखी और समृद्ध थे। कहते हैं ऐसा सुख और शांति उनसे पहले और उनके बाद किसी के राज्यकाल में नहीं रही; इसलिए रामराज्य की महिमा आज तक गायी जाती है। प्रजा के सेवक और प्यारे होने के कारण वह जनता के पूज्य और आराध्य बन गये। आज भी भारत की जनता उन्हें भगवान मान कर पूजती है। राम का उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य सचाई, प्रेम और सेवा के द्वारा भगवान के पद तक पहुँच सकता है।

महाभारत की कथा—महाभारत नाम के ग्रंथ में कौरवों और पांडवों के बीच जो घमासान लड़ाई हुई थी उसका वर्णन है। प्राचीन समय में आजकल की दिल्ली के पास हस्तिनापुर का राज्य था। यहाँ पुरवंशी राजा राज्य करते थे। जिन चक्रवर्ती महाराज भरत के नाम पर हमारा देश भारतवर्ष कहलाया, वे इसी वंश के राजा दुष्यंत के बेटे थे। इनके वंशजों में राजा कुरु भी हुए। इनके उत्तराधिकारी कौरव कहलाये। आगे चल कर कौरव-वंश में राजा विचित्रवीर्य हुए। उनके दो लड़के थे—धृतराष्ट्र और पांडु। धृतराष्ट्र के लड़के कौरव और पांडु के पुत्र पांडव कहलाये। धृतराष्ट्र जन्म के अन्धे थे; इसलिए उनके छोटे भाई पांडु हस्तिनापुर के राजा हुए।

धृतराष्ट्र के सौ पुत्र हुए जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था। पांडु के पाँच लड़के हुए—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन नकुल और सहदेव। धृतराष्ट्र के लड़के कौरवों और पांडु के

बेटे पांडवों में बचपन से ही मनमुटाव हो गया। कौरवों और पांडवों ने बचपन में साथ ही पढ़ा-लिखा और युद्ध-विद्या सीखी, लेकिन आपस में ईर्ष्या-द्वेष रखना न छोड़ा।

धृतराष्ट्र का बड़ा लड़का दुर्योधन तो पांडवों को फूटी आँख से भी न देख सकता था। युधिष्ठिर बहुत सीधे और सच्चे आदमी थे। उनके पिता पांडु जब परलोक सिधार गये तब धृतराष्ट्र ने उन्हें राजगद्दी देनी चाही, लेकिन दुर्योधन ने यह न होने दिया। उसने एक बार पांडवों को लाख के मकान में रख कर जला देने का भी यत्न किया। पांडवों को इस षड्यंत्र का भेद मिल गया और वे हस्तिनापुर छोड़ कर चले गये।

हस्तिनापुर से पांडव पांचाल देश में पहुँचे। वहाँ पांचाल राजा की बेटी द्रौपदी से अर्जुन का विवाह हुआ। विवाह कर के पांडव घर लौट आये और धृतराष्ट्र से आधा राज्य माँग कर हस्तिनापुर के पास ही इंद्रप्रस्थ नगर बसा कर राज्य करने लगे।

थोड़े ही समय में पांडवों का यश सर्वत्र फैल गया। तब युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। उनकी कीर्ति और प्रशंसा से दुर्योधन जल-भुन उठा। हँसी-ही-हँसी में एक दिन दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुआ खेलने का न्योता दिया। युधिष्ठिर ने इस न्योते को स्वीकार कर लिया। जुए में वह अपना राज-पाट, घर-बार सब कुछ हार गये। जुए की एक शर्त के अनुसार पांडवों को १३ वर्ष वन में रहने के लिए जाना पड़ा।

वनवास के बाद घर लौटने पर पांडवों ने दुर्योधन से अपना राज्य वापस माँगा। दुर्योधन ने, राज्य तो दूर रहा,
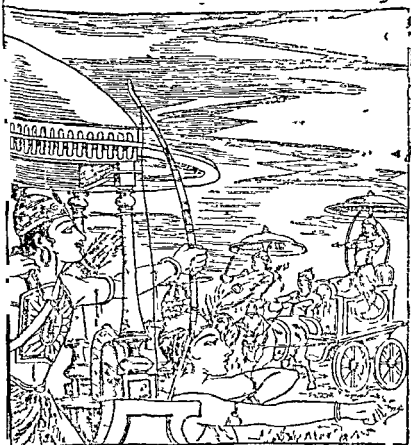
महाभारत का युद्ध

पाँच गाँव भी पाँचों भाइयों को देने से इनकार कर दिया। पांडवों की तरफ से द्वारका के महाराज श्रीकृष्ण ने दुर्योधन

को बहुत समझाया कि न्याय करो और पांडवों का हिस्सा उनको दे दो, पर लोभी दुर्योधन ने नहीं माना।

श्रीकृष्ण ने तब पांडवों को अपने अधिकार के लिए लड़ने की सलाह दी। लड़ने के अलावा दूसरा रास्ता रह भी न गया था। परिणामतः कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरवों और पांडवों में १८ दिन तक घमासान युद्ध हुआ। दोनों तरफ से भारत के बड़े-बड़े राजा लड़ाई में शामिल हुए। दुर्योधन के पास पांडवों की सेना से भी बड़ी सेना थी, परंतु उसकी तरफ न्याय न था; इसलिए न्याय और सचाई पर टिके हुए पांडव, संख्या में कम होने पर भी विजयी हुए। कौरवों के लाखों योद्धा दुर्योधन समेत मार डाले गये।

युद्ध में विजयी होने पर युधिष्ठिर हस्तिनापुर के राजा हुए, लेकिन थोड़े ही समय बाद उन्होंने राजपाट अपने भाई अर्जुन के पौत्र परीक्षित को दे दिया और स्वयं भाइयों के साथ अपना अन्त समय हिमालय में बिताने के लिए चले गये।

महाकाव्य-काल का समाज—रामायण और महाभारत के पढ़ने से हमें मालूम होता है कि महाकाव्य-काल में नगर उन्नत और समृद्धिशाली थे। नगरों को शत्रुओं के आक्रमण से सुरक्षित रखने के लिए उनकी क़िलेबंदी कर दी जाती थी। नगरों की सड़कों पर पानी का छिड़काव किया जाता था और रात में रोशनी का प्रबन्ध भी रहता था। राजा का महल, न्यायालय और संगीत तथा खेल आदि के सब स्थान नगर के भीतर होते थे। नगर के

भीतर प्रवेश के लिए सामान्यतः चार द्वार हुआ करते थे।

राजा स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। उसे धर्म और नीति पर चलना पड़ता था। दुष्ट और अन्यायी राजा को शासनच्युत भी किया जा सकता था।

रामायण से यह भी माल्म होता है कि मनुष्य का जीवन तब ऊंचे आदर्शों पर आधारित था। लोग अधिकतर सीधे और सच्चे थे। धर्म-कर्म में लोगों की काफी रुचि थी; परन्तु महाभारत का समाज ऐसा सीधा, सौम्य और धर्म-परायण नहीं माल्म पड़ता। जाति-पाँति और ऊंच-नीच के भाव महाभारत के समय में बहुत जोर पकड़ रहे थे। जो जिस जाति में जन्म लेता था वह उसी जाति का कहलाता था। अगर कोई शूद्र चाहे कि क्षत्रिय का काम कर क्षत्रिय बन जाय तो ऐसा नहीं हो सकता था। इसी तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के वर्ग भी दृढ़ होते जा रहे थे। शूद्रों के साथ विवाह और खान-पान करना बुरा समझा जाता था। शूद्रों के अलावा चांडाल भी होते थे जिन्हें ऊंची जातिवाले छूना भी बुरा समझते थे।

महाकाव्य-काल में पुरुष एक से ज्यादा विवाह करने लगा था। बाल-विवाह कम होते थे। लड़कियों को स्वयं वर चुनने का अधिकार था। ऐसे विवाहों को स्वयंवर कहते थे।

धर्म में अब आडंबर भी आ गया और ऐसे यज्ञ अधिक होने लगे जिनमें पशुओं को मार कर बलि चढ़ाया जाता था। लोगों में वैदिक-काल का-सा निर्मल व्यवहार नहीं

जिस समय हमारे भारतीय समाज की यह अवस्था हो रही थी उसी समय दो ऐसे सुधारकों ने जन्म लिया जिन्होंने ब्राह्मणों के यज्ञ, कर्मकांड के पाखंडों तथा जाति-भेद का विरोध किया और सच्चे ज्ञान का उपदेश दिया। ये दोनों सुधारक क्षत्रिय राजकुल में पैदा हुए थे। इनका नाम महावीर और गौतम बुद्ध है। महावीर ने जैन-धर्म और गौतम बुद्ध ने बौद्ध-धर्म का प्रचार किया था। इन दोनों के धर्म आज भी भारत में मौजूद हैं।

जैन-धर्म के प्रचारक—जैन-धर्म के प्रचारक कई हुए हैं। इन प्रचारकों को तीर्थंकर कहा जाता है। सबसे पहले तीर्थंकर ऋषभदेव कहे जाते हैं। कहा जाता है, उनके बाद २३ तीर्थंकर और हुए। अंतिम अर्थात् २४ वें तीर्थंकर महावीर थे और वे ही जैन-धर्म के प्रमुख प्रचारक माने जाते हैं।

वर्धमान महावीर—महावीर स्वामी का जन्म ईसा से लगभग ५९९ वर्ष पहले वैशाली, बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के पास कुन्दग्राम में हुआ था। इनके पिता सिद्धार्थ एक धनी और उच्च कुल के क्षत्रिय थे। इनकी माता त्रिशला लिच्छवि राजघराने की राजकुमारी थी। महावीर का बचपन का नाम वर्धमान था; इसलिए उन्हें वर्धमान महावीर भी कहते हैं। बचपन से ही वे दूसरों के दुःख-दर्द दूर करने के उपाय सोचने में लगे रहते थे। अतः वे तीस वर्ष की अवस्था में घर-बार छोड़ कर जंगल में तपस्या करने चले

बारह वर्ष तक उन्होंने घोर तपस्या की और ज्ञान प्राप्त किया। ज्ञान प्राप्त कर लेने पर वे 'जिन' कहलाये। 'जिन' का अर्थ है इन्द्रियों को जीतनेवाला अर्थात् जिसने मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि संसार के दुःख-सुख को जीत लिया है। महावीर के 'जिन' कहलाने से उनके अनुयायियों को 'जैन' और उनके द्वारा प्रचार किये गये धर्म को जैनधर्म कहा जाता है। 'जिन' होने के समय से अपने जीवन के अन्त तक महावीर बिहार प्रांत में घूम-घूम कर अपने धर्म का प्रचार करते रहे। लगभग ७२ वर्ष की उम्र में बिहार में राजगृह के पास पावा नामक स्थान में ईसा के ५२७ वर्ष पहले उनका निर्वाण (देहांत) हो गया।

जैन-धर्म की शिक्षा—जैन-धर्म का मुख्य ध्येय था मनुष्य को संसार के दुःखों से छुड़ाना। इस छुटकारे को मोक्ष-प्राप्ति कहते हैं। महावीर ने बतलाया कि मनुष्य तभी संसार के दुःखों और कष्टों तथा बार-बार जन्म लेने और मरने के चक्कर से छुटकारा पा सकता है जब वह (१) किसी जीव-जंतु को न मारे और न किसी तरह सतावे (अहिंसा), (२) सच बोले (सत्य), (३) चोरी न करे (अचौर्य), (४) ब्रह्मचर्य व्रत पाले, (५) धन-दौलत का मोह न रख कर संयम से रहा करे (अपरिग्रह)। उनका कहना था कि इस तरह सदाचार से रहते हुए आदमी सत्य, श्रद्धा, ज्ञान और चरित्रके द्वारा मोक्ष पा सकता है। इस मोक्ष-प्राप्ति के लिए उन्होंने जाति का कोई बंधन नहीं रखा। उनका कहना था

रह गया था। वे अंधविश्वासी अधिक हो गये थे, लेकिन महाभारत-काल में कला-कौशल की काफी उन्नति हुई, जिससे यहाँ का व्यापार बढ़ा और देश धन-धान्य से भरा-पूरा हो गया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. राम और रावण में युद्ध क्यों हुआ और उसका क्या परिणाम हुआ?
२. कुरुक्षेत्र की लड़ाई का वर्णन कीजिए।
३. महाकाव्य-काल में समाज किस प्रकार का था?

अध्याय ७

धार्मिक क्रान्ति

कर्मकाण्ड और हिंसात्मक यज्ञों का प्रचार— वैदिक काल में आर्य या हिन्दू-धर्म बहुत ही सरल और सादा था। लोग देवी-देवताओं को पूजते थे, लेकिन अंध-विश्वास में पड़ कर लाभ के लिए यज्ञ में पशु अधिक नहीं मारा करते थे। वे लोग ज्ञानी थे और आडंबर नहीं करते थे।

वैदिक काल के बाद आर्य-धर्म बहुत बदल गया और बिगड़ भी गया। आर्य लोग अब जातियों में बँट गये। ये जातियाँ चार थीं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। सातवीं और छठीं शताब्दी ईसा-पूर्व में इन जातियों के भेद बहुत कड़े हो गये। जो आदमी जिस जाति में पैदा होता था वह उसी जाति का माना जाता था। शूद्र नीचे दर्जे के समझे जाने लगे थे। शूद्रों से भी नीचे चांडाल थे

जिनको कोई छूता तक नहीं था। क्षत्रिय और वैश्य ब्राह्मणों से हीन समझे जाने लगे थे। जाति या वर्ण में ब्राह्मण का स्थान सबसे ऊपर हो गया। सारे धर्म-कर्म और यज्ञ आदि तथा वेदों का पढ़ना-पढ़ाना केवल ब्राह्मणों के ही हाथ में था। ऊपरी तीन वर्णवालों का जीवन विभिन्न आश्रमों में बँटा हुआ था। ये आश्रम चार थे—(१) ब्रह्मचर्य, (२) गृहस्थ, (३) वाणप्रस्थ और (४) सन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रम में रह कर लड़का २५ वर्ष तक विद्या सीखता था। इस आश्रम का पालन करना तीनों वर्णों के लिए अनिवार्य समझा जाता था। उसके बाद विवाह कर के ५० वर्ष की उम्र तक वह गृहस्थ आश्रम में रहता था। फिर कुछ समय वन में रह कर तपस्या करता और अन्त में सन्यास ले लेता था, किंतु चौथा या अंतिम आश्रम केवल ब्राह्मणों के लिए था। ब्राह्मणों को आश्रम-धर्म का पालन करना विशेष रूप से आवश्यक था। वर्ण और आश्रम के इन नियमों के पालन करनेवाले ब्राह्मण अपने को सबसे श्रेष्ठ मानते थे। ये वर्णाश्रम-धर्मवाले ब्राह्मण यज्ञ आदि धार्मिक कार्यों पर बहुत जोर देते थे। वैदिक-ऋषियों की तरह ईश्वर और सत्य का चिन्तन वे कम करते थे; इसलिए इन ब्राह्मणों को ज्ञानी न कह कर कर्मकांडी कहा जाता है। कर्मकांड, जातिभेद और हिंसावाले यज्ञों के बढ़ जाने से वैदिक काल की सच्ची भक्ति और सच्चा धर्म समाज से गायब-सा हो गया और लोगों में पाखंड भी अधिक फैल गया।

जिस समय हमारे भारतीय समाज की यह अवस्था हो रही थी उसी समय दो ऐसे सुधारकों ने जन्म लिया जिन्होंने ब्राह्मणों के यज्ञ, कर्मकांड के पाखंडों तथा जाति-भेद का विरोध किया और सच्चे ज्ञान का उपदेश दिया। ये दोनों सुधारक क्षत्रिय राजकुल में पैदा हुए थे। इनका नाम महावीर और गौतम बुद्ध है। महावीर ने जैन-धर्म और गौतम बुद्ध ने बौद्ध-धर्म का प्रचार किया था। इन दोनों के धर्म आज भी भारत में मौजूद हैं।

जैन-धर्म के प्रचारक—जैन-धर्म के प्रचारक कई हुए हैं। इन प्रचारकों को तीर्थंकर कहा जाता है। सबसे पहले तीर्थंकर ऋषभदेव कहे जाते हैं। कहा जाता है, उनके बाद २३ तीर्थंकर और हुए। अंतिम अर्थात् २४ वें तीर्थंकर महावीर थे और वे ही जैन-धर्म के प्रमुख प्रचारक माने जाते हैं।

वर्धमान महावीर—महावीर स्वामी का जन्म ईसा से लगभग ५९९ वर्ष पहले वैशाली, बिहार के मुजफ्फरपुर जिले के पास कुन्दग्राम में हुआ था। इनके पिता सिद्धार्थ एक धनी और उच्च कुल के क्षत्रिय थे। इनकी माता त्रिशला लिच्छवि राजघराने की राजकुमारी थी। महावीर का बचपन का नाम वर्धमान था; इसलिए उन्हें वर्धमान महावीर भी कहते हैं। बचपन से ही वे दूसरों के दुःख-दर्द दूर करने के उपाय सोचने में लगे रहते थे। अतः वे तीस वर्ष की अवस्था में घर-बार छोड़ कर जंगल में तपस्या करने चले

बारह वर्ष तक उन्होंने घोर तपस्या की और ज्ञान प्राप्त किया। ज्ञान प्राप्त कर लेने पर वे 'जिन' कहलाये। 'जिन' का अर्थ है इन्द्रियों को जीतनेवाला अर्थात् जिसने मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि संसार के दुःख-सुख को जीत लिया है। महावीर के 'जिन' कहलाने से उनके अनुयायियों को 'जैन' और उनके द्वारा प्रचार किये गये धर्म को जैनधर्म कहा जाता है। 'जिन' होने के समय से अपने जीवन के अन्त तक महावीर बिहार प्रांत में घूम-घूम कर अपने धर्म का प्रचार करते रहे। लगभग ७२ वर्ष की उम्र में बिहार में राजगृह के पास पावा नामक स्थान में ईसा के ५२७ वर्ष पहले उनका निर्वाण (देहांत) हो गया।

जैन-धर्म की शिक्षा—जैन-धर्म का मुख्य ध्येय था मनुष्य को संसार के दुःखों से छुड़ाना। इस छुटकारे को मोक्ष-प्राप्ति कहते हैं। महावीर ने बतलाया कि मनुष्य तभी संसार के दुःखों और कष्टों तथा बार-बार जन्म लेने और मरने के चक्र से छुटकारा पा सकता है जब वह (१) किसी जीव-जंतु को न मारे और न किसी तरह सतावे (अहिंसा), (२) सच बोले (सत्य), (३) चोरी न करे (अचौर्य), (४) ब्रह्मचर्य व्रत पाले, (५) धन-दौलत का मोह न रख कर संयम से रहा करे (अपरिग्रह)। उनका कहना था कि इस तरह सदाचार से रहते हुए आदमी सत्य, श्रद्धा, ज्ञान और चरित्र के द्वारा मोक्ष पा सकता है। इस मोक्ष-प्राप्ति के लिए उन्होंने जाति का कोई बंधन नहीं रखा। उनका कहना था

कि मनुष्य चाहे जिस जाति और वर्ण का हो, सम्यक्-दर्शन व ज्ञान-चरित्र का पालन कर के मोक्ष पा सकता है। अहिंसा पर उन्होंने बहुत जोर दिया है। अतः जैन-धर्म में अहिंसा का बड़ा महत्त्व और महिमा बतलायी जाती है।

महावीर की इन शिक्षाओं का छोटे और बड़े बहुत-से लोगों पर असर पड़ा और वे जैन-धर्म के अनुयायी बन गये। महावीर की मृत्यु के कुछ समय बाद जैन-धर्म में दो दल हो गये। एक दिगंबर और दूसरा श्वेतांबर। दिगंबर साधु नग्न रहते हैं। दिगंबर पुराने अनुयायियों में से थे। श्वेतांबर साधु सफेद कपड़ा पहना करते हैं और मुँह पर पट्टी बाँधते हैं। यह संप्रदाय महावीर की मृत्यु के बाद चंद्रगुप्त मौर्य के समय पैदा हुआ था। जैन-धर्म के मानने-वाले आज भी भारत में मौजूद हैं। गिनती में जैनियों की संख्या आज लगभग २० लाख है।

गौतमबुद्ध और बौद्ध-धर्म—बौद्ध-धर्म के चलाने-वाले गौतम बुद्ध थे। महावीर की तरह इन्होंने भी वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध आवाज उठायी और एक नया धर्म चलाया। गौतम कपिलवस्तु (नेपाल की तराई) के राजा शुद्धोदन के लड़के थे। इनका जन्म ईसा से लगभग ५६३ वर्ष पहले हुआ था। पैदा होने के कुछ ही समय बाद उनकी माता मायादेवी की मृत्यु हो गयी। इनका बचपन का नाम सिद्धार्थ था। शाक्यवंश में पैदा होने के कारण बाद में वे शाक्यमुनि कहलाये।

सिद्धार्थ बचपन से ही ज्ञान-ध्यान में लगे रहा करते थे। दुनिया के दुःखों को देख कर वे उन्हें मिटाने की चिंता किया करते थे। सुख-भोग की तरफ उनका मन नहीं जाता था। पिता ने उनके लिए सारे सुखों के सामान इकट्ठे कर दिये थे, पर वे किसी चीज को पसन्द नहीं करते थे। १६ वर्ष के होने पर उनके पिता ने यशोधरा नाम की एक बड़ी रूपवती राजकुमारी से उनकी शादी कर दी। इस विवाह से उनके राहुल नाम का एक पुत्र पैदा हुआ, पर विवाहित होने के बाद भी संसार के सुखों में उनका मन न लगा।

सिद्धार्थ जब घूमने जाते और किसी बूढ़े, बीमार और दुःखी आदमी या मुर्दे को देखते तो उन्हें यही लगता कि इस संसार में दुःख ही दुःख है। इस दुःख से मनुष्य को कैसे छुटकारा (मोक्ष) मिले—वे इसी सोच में पड़ जाते। आखिर जब वे ३० वर्ष के हुए तो ज्ञान की खोज में अपना राजपाट, घर-बार, पत्नी और पुत्र को त्याग कर घर से निकल गये। लगभग ६ वर्ष तक उन्होंने कठिन और घोर तपस्या की, पर इससे भी कोई फल न निकला। इसके बाद वे गया में, एक पीपल के पेड़ के नीचे, समाधि लगा कर बैठ गये और अपने ही हृदय में ज्ञान को ढूँढ़ने लगे। अंत में उनकी इच्छा पूरी हुई और जैसा वे चाहते थे उन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया। ज्ञान प्राप्त हो जाने से वे ज्ञानी या बुद्ध कहलाने लगे। पीपल के जिस पेड़ के नीचे बैठ कर उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था वह पेड़ बोधि-वृक्ष

कहलाया। बुद्ध होने के बाद गौतम ने अपने ज्ञान का प्रचार शुरू कर दिया। उनके जो अनुयायी हुए वे बौद्ध कहलाये।

बुद्ध होने के बाद गौतम ने लगभग ४०-५०वर्ष तक स्वयं घूम-घूम कर अपने धर्म का प्रचार किया। उनकी मधुर और सुन्दर वाणी का लोगों पर बहुत असर पडा और बहुत-से लोग उनके अनुयायी हो गये। लगभग ८० वर्ष की अवस्था में कुशीनगर गाँव में ईसा से ४८३ वर्ष पहले उनका निर्वाण (देहांत) हो गया।

महात्मा बुद्ध (सारनाथ)

बौद्ध धर्म की शिक्षा—

महावीर की तरह गौतमबुद्ध ने भी बतलाया कि मनुष्य संसार में तभी सुखी रह सकता है जब वह जीवों पर दया करे और किसी को न सतावे अर्थात् हिंसा न करे। ब्राह्मणों के हिंसात्मक यज्ञों का, जिनमें पशुओं को मारा जाता था, उन्होंने विरोध किया। गौतम का कहना था कि जब तक मनुष्य सभी प्राणियों से प्रेम नहीं रखता और उनकी सेवा नहीं करता तब तक

जप-तप और पूजा-पाठ आदि से कोई लाभ नहीं हो सकता। दुःखों से छुटकारा या मोक्ष मिलने का यही रास्ता है कि मनुष्य अच्छे कर्म करे; सब से प्रेम करे, सबकी भलाई के काम करे और किसी का बुरा न चाहे।

अच्छे कर्म करने के लिए गौतम ने सदाचारी होने पर जोर दिया है। उन्होंने कहा कि आदमी तभी सदाचारी हो सकता है जब वह झूठ न बोले, मन या वचन से किसी को न तो बुरा कहे न किसी का बुरा चाहे, किसी से ईर्ष्या न करे, द्वेष न रखे, चोरी और व्यभिचार आदि किसी तरह का पाप न करे और शरीर तथा मन से पवित्र रहा करे। अगर आदमी इतना कर ले तो उसे दुःख से छुट-कारा तथा मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त हो जायगा।

ब्राह्मणों के जाति-पाँति के झगड़ों को भी उन्होंने गलत बतलाया। उनका कहना था कि जो आदमी अच्छे कर्म करनेवाला है, सदाचारी है, वही सबसे बड़ी जाति का है। गौतम ने जन्म से जाति मानने से इनकार कर दिया; इसलिए किसी भी जाति का आदमी उनका शिष्य हो सकता था। उनके इस बराबरी के व्यवहार से सभी वर्णों के लोगों ने उनका धर्म अपनाया और उनके अनेक शिष्य हो गये। बुद्ध भगवान ने स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह सन्यास लेने और भिक्षुणी बन कर धर्म प्रचार करने की आज्ञा दे दी थी। निःसंदेह गौतम बुद्ध दया और कल्याण के अवतार थे और सभी प्राणी उनके लिए समान थे।

यही कारण है कि गौतम बुद्ध को सारे संसार ने अपना धर्म-गुरु और भगवान स्वीकार किया।

जैन-धर्म की तरह गौतम बुद्ध की मृत्यु के कुछ शताब्दी बाद बौद्ध-धर्म में भी दो दल या पंथ हो गये। एक दल हीनयान कहलाया और दूसरा महायान। हीनयान धर्मवाले बुद्ध की मूर्ति नहीं पूजते। केवल उनकी शिक्षाओं के पालन पर जोर देते हैं, लेकिन महायान पंथवाले बुद्ध की मूर्ति बना कर पूजते हैं।

बौद्ध-धर्म का प्रचार—बौद्ध-धर्म का प्रचार जैन-धर्म से बहुत अधिक हुआ। जाति-भेद मिटा देने से यहाँ की हर जाति के लोगों ने बौद्ध-धर्म को ग्रहण किया। गौतम-बुद्ध साधारण बोल-चाल की भाषा में उपदेश दिया करते थे। इससे साधारण जनता को उनका धर्म अपनाने और समझने में सरलता हुई। उनके अनेक शिष्यों—भिक्षुओं और भिक्षुणियों—ने भी अपने गुरु की तरह सब जगह घूम-घूम कर बौद्ध-धर्म का प्रचार किया। बुद्ध की मृत्यु के बाद उनके अनुयायी कई शक्तिशाली राजाओं ने भी देश-विदेश में बौद्ध धर्म के पंडितों और आचार्यों को धर्म-प्रचार के लिए भेजा। इन राजाओं में बौद्ध-धर्म का सबसे अधिक प्रचार अशोक और कनिष्क ने किया जिनका वर्णन आप आगे के अध्यायों में पढ़ेंगे। इनके प्रयत्नों से बौद्ध-धर्म भारत से ले कर तिब्बत, चीन, जापान, हिंदचीन स्याम, बर्मा और लंका आदि देशों में फैल गया। आज

भारत से तो यह धर्म लगभग उठ ही गया है, लेकिन चीन, तिब्बत आदि बाहरी देशों में अब भी मौजूद है।

जैन और बौद्ध-धर्म—जैन और बौद्ध-धर्म कुछ बातों में एक-से हैं, लेकिन कुछ बातों में उनमें अन्तर है। दोनों धर्म अहिंसा, सम्यक्-कर्म और सदाचार पर जोर देते हैं। दोनों धर्म वेदों के खिलाफ हैं और जाति-पाँति के भेदों को नहीं मानते, परन्तु इतना होते हुए भी दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं। जैन-धर्म मुक्ति या मोक्ष की प्राप्ति के लिए कठिन तप और शरीर को कष्ट देने तथा वैराग्य पर जोर देता है, पर बौद्ध-धर्म इन बातों को मोक्ष के लिए जरूरी नहीं समझता। इसी तरह अहिंसा पर जितना जैन-धर्म जोर देता है उतना बौद्ध-धर्म नहीं देता। जैन-धर्मवाले छोटे-छोटे कीड़ों को मारना भी पाप समझते हैं, लेकिन बौद्ध-साधु भिक्षा में मिले मांस को भी खा लेने में हिंसा नहीं मानते। इन बहुत कड़े और कठिन आचारों और नियमों के कारण ही जैन-धर्म का प्रचार ज्यादा न हो सका और बौद्ध-धर्म सरल तथा सुगम होने से खूब फैला, किन्तु बौद्ध-धर्म अत्यधिक फैलने पर भी आज भारत से उठ गया है और जैन-धर्म बहुत अधिक न फैलने पर भी अपने आचारों तथा दृढ़ता के कारण आज तक भारत में विद्यमान है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. जैन और बौद्ध धर्म क्यों पैदा हुए?

१. बुद्ध और महावीर के बारे मे आप क्या जानते हैं?

३. जैन और बौद्ध-धर्म के कौन-कौन सिद्धान्त मिलते-जुलते हैं?

अध्याय ८

भारत पर सिकंदर का आक्रमण

भारत की दशा—महावीर और बुद्ध के बाद भारत के इतिहास की एक बड़ी और प्रसिद्ध घटना सिकंदर का आक्रमण है, लेकिन उसके आक्रमण का हाल बतलाने से पहले हम आपको उस समय के भारत की दशा के बारे में कुछ बतलायेंगे। बुद्ध के समय में मगध, कोशल, अवंति, कौशांबी आदि बहुत बड़े राज्य थे, लेकिन इनमें मगध का राज्य सबसे बड़ा और शक्तिशाली था। जिस समय बुद्ध जीवित थे, मगध में शिशुनाग वंश का राजा बिम्बिसार (लगभग ई० पू० ५५८-४९१) राज करता था। उसके बाद उसका लड़का अजातशत्रु (लगभग ई० पू० ४९१ ४५९) राजा हुआ। इसने कोशल के राजा को हराया और उसकी बेटी से विवाह किया। कोशल के राजा ने बेटी के विवाह में अजातशत्रु को काशी का राज दहेज में दे दिया। अजातशत्रु ने मगध के पाटलिग्राम नामक गाँव में शत्रुओं से अपने राज को सुरक्षित रखने के लिए एक दुर्ग बनवाया। बाद में उसके बेटे या पोते उदयी ने इस दुर्ग के पास ही कुसुमपुर या पाटलिपुत्र नाम का एक नगर बसाया जो आगे चल कर भारत का सबसे प्रसिद्ध नगर हुआ। इसी नगर को आजकल पटना कहते हैं।

शिशुनाग-वंश का आखिरी राजा महानंदिन हुआ। उसकी

एक शूद्र पत्नी थी जिससे उसके महापद्मनंद नाम का लड़का हुआ। शूद्र माता का होने से यह नीच कुल का समझा जाता था; इसलिए महापद्मनंद ने शिशुनाग की जगह अपना अलग वंश चलाया। इसका चलाया वंश नंदवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह बड़ा वीर और शक्तिशाली व्यक्ति निकला। इसने कोशल, कौशांबी और अवंति के राजाओं को हरा कर बहुत दूर तक अपने राज्य का विस्तार किया। कश्मीर, पंजाब और सिन्ध को छोड़ कर सारे उत्तरी भारत पर इसका साम्राज्य स्थापित हो गया। महापद्मनंद के आठ लड़के थे जिनमें से धनानंद (ईसवी पूर्व ३२६) अधिक प्रसिद्ध हुआ। भारत में जब इस तरह से नंदों का राज्य प्रबल हो रहा था उसी समय मैसिडोनिया और यूनान के राजा सिकंदर ने पंजाब और सिन्ध पर आक्रमण किया।

महान विजेता सिकंदर—योरप में यूनान या ग्रीस नाम का एक देश है। इस यूनान देश के पड़ोस में उत्तर की तरफ मकदूनिया या मैसिडोनिया नाम की एक छोटी-सी रियासत थी। इस रियासत का राजा फिलिप बहुत वीर और प्रतापी हुआ जिसने लगभग सारे यूनान पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। फिलिप के बाद उसका असाधारण बेटा सिकंदर मैसिडोनिया और यूनान का राजा हुआ। सिकंदर अपने पिता से भी बढ़ कर योद्धा और पराक्रमी निकला। उसने अपने बाहुबल से संसार के अनेक देशों को जीत कर दूर-दूर तक अपना राज्य फैलाया। उसने संकल्प

कर रखा था कि वह सारी दुनियां को जीत डालेगा। इस संकल्प को उसने बहुत कुछ पूरा भी किया। उसने मिस्र और पश्चिमी एशिया के कई देशों पर चढ़ाई की और उन्हें जीता। उसके समय में ईरान या फारस का राजा दारा बहुत ताकतवर था। सिकंदर ने उसके राज्य पर चढ़ाई की और विजयी हुआ। ईरान आदि को जीतने के बाद वह अफ़गानिस्तान को रौंदता हुआ भारतकी सीमा पर आ पहुँचा।

सिकदर महान

भारत पर आक्रमण—सिकंदर के आने के समय सिंध और पंजाब में कई छोटे-छोटे राज्य थे। उनमें आपस में मेल न था। वे एक दूसरे से लड़ते-भिड़ते रहते थे। सिकंदर जब हमारे देश के दरवाजे पर आ पहुँचा उस समय भी वे आपस में मिल कर एक न हो सके। अगर उस समय वे सब आपस में मिल कर एक हो जाते और

दुश्मन का सामना करते तो यूनान के राजा की क्या मजाल थी कि वह भारतीयों को हरा सकता, पर उनके आपसी वैर ने सब कुछ खो दिया।

३२६ ई० पू० में सिन्धु नदी को पार कर जब सिकंदर हमारे देश के अन्दर घुसा तो पश्चिमी पंजाब में तक्षशिला का राजा अम्भी उससे मिल गया। इस प्रकार भारत का भाग्य खोटा था कि भारत का ही एक राजा अपने देश के विरुद्ध शत्रु से जा मिला। सिकंदर को अब क्या चाहिए था; अम्भी की मदद पा कर वह तेजी से झेलम की ओर बढ़ चला।

सिकंदर और पुरु का युद्ध—झेलम और चिनाब के बीच तब एक शक्तिशाली राज्य था। इस राज्य का राजा पुरु या पोरस था। वह अम्भी की तरह कायर और देश-द्रोही न था। पुरु अपनी मातृभूमि का भक्त था; इसलिए जब सिकन्दर बढ़ता हुआ उसके राज्य की सीमा पर पहुँचा तो वह भी अपनी विशाल सेना ले कर उसका मुकाबला करने को आगे बढ़ा। झेलम नदी के तट पर सिकंदर और पुरु की सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। पुरु के विशाल सैन्यदल और हाथियों को देख कर सिकंदर के सैनिक डर से काँप उठे। भारतीय सैनिकों ने युद्ध में यूनानियों के छक्के छुड़ा दिये, लेकिन हाथियों के भड़क जाने से अन्त में पुरु की सेना हार गयी और सिकंदर विजयी हुआ। हारने पर भारतीय सैनिकों में भगदड़ मच गयी, लेकिन वीर पुरु अकेला ही तब तक मैदान में डटा रहा, जब तक कि बुरी तरह घायल हो कर गिर न गया।

अन्त में पुरु को गिरफ्तार कर के सिकंदर सामने लाया गया। सिकंदर ने पूछा—'कहो, तुमसे कैसा बर्ताव किया जाय'? पुरु डरनेवाला न था; इसलिए उसने निर्भयता से कहा—'जैसा एक राजा को दूसरे राजा के साथ करना चाहिए'। पुरु की इस निर्भीकता और तेजस्विता से सिकंदर प्रसन्न हो उठा और उसका राज्य उसे लौटा कर उससे मित्रता कर ली।

सिकंदर का लौटना—सिकंदर अब व्यास नदी को पार कर उत्तरी भारत की ओर बढ़ना चाहता था, लेकिन उसकी फौज ने साथ न दिया। एक तो, यूनानी सैनिक पुरु की वीरता से घबरा उठे थे दूसरे, उन्होंने सुन रखा था कि मगध में नंदों का राज्य है जिनकी शक्ति सैकड़ों पुरुओं के बराबर है। इन्हीं दो कारणों से यूनानी सैनिक व्यास से आगे बढ़ने की हिम्मत न कर सके और सिकंदर को विवश हो कर यहीं से झेलम आ कर वापस लौट जाना पड़ा।

सिंधु नदी तक वापस होने में उसे कई छोटे-छोटे प्रजातंत्र राज्यों से लड़ाई लड़नी पड़ी। सिंधु नदी के मुहाने पर पहुँच कर सिकंदर ने अपनी सेना के कुछ भाग को साथ ले कर बलूचिस्तान और ईरान के स्थल-मार्ग से वापस चल दिया और बाकी सेना को उसने समुद्र के रास्ते से वापस भेजा, किन्तु सिकंदर को अपने घर वापस जाना नहीं बदा था।

बेबिलोनिया में पहुँच कर वह एकाएक बीमार पड़ा और तैंतीस-वर्ष की अवस्था में ही परलोक सिधार गया।

सिकंदर के आक्रमण का प्रभाव—सिकंदर का आक्रमण भारत पर ऐसे ही हुआ जैसे कोई आँधी आती है। आँधी जिस तरह बहुत-से पेड़ों को उखाड़ डालती है उसी तरह सिकंदर के हमले से पंजाब के कई छोटे-छोटे राज्य नष्ट हो गये, परन्तु आँधी के बाद सारा वायुमंडल जैसे शांत और निर्मल हो जाता है उसी तरह सिकंदर के लौटने के कुछ ही समय बाद भारत से यूनानी सत्ता उठ गयी और चंद्रगुप्त मौर्य ने यूनानियों के विजित प्रदेश पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर पुनः शान्ति स्थापित की। कुछ दिनों के बाद तो भारत के निवासी सिकंदर के हमले की सारी बातें ही भूल गये जैसे हम किसी स्वप्न को भूल जाया करते हैं।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. सिकंदर के आक्रमण के समय भारत की अवस्था कैसी थी ?
२. सिकंदर पुरु को हराने के बाद व्यास से आगे क्यों नहीं बढ़ा ?
३. अम्भी कौन था ? उसे देशद्रोही क्यों कहते हैं ?

अध्याय ६

मौर्य-साम्राज्य का स्थापना

नंद-वंश का अन्त—हम वर्णन कर चुके हैं कि जिस समय भारत पर सिकंदर ने आक्रमण किया था, मगध में नंद-वंश के शक्तिशाली राजा राज्य करते थे। इस वंश का अंतिम राजा धननंद के अत्याचारों से उसकी प्रजा उससे असंतुष्ट हो चली थी। नाराज प्रजा पर राज्य करना कठिन होता है; क्योंकि राजा के अत्याचारों से प्रजा विद्रोह कर देती है। धननंद के साथ भी ऐसा ही हुआ। एक अनुश्रुति के अनुसार धननंद के सेनापति के लड़के चंद्रगुप्त ने चाणक्य नामक ब्राह्मण की सहायता ले कर उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया, लेकिन इसमें वह सफल न हुआ। वह भाग कर तब पंजाब चला गया। पंजाब में चंद्रगुप्त उस समय पहुँचा जब सिकंदर वहाँ आया हुआ था। उसने सिकंदर से जान-पहचान की और कुछ दिन उसकी छावनी में रह कर यूनानियों की रण-विद्या भी सीख ली।

सिकंदर जब लौट गया तो चंद्रगुप्त ने मौका देख कर पंजाब के राजाओं को मिला कर वहाँ से रहे-सहे यूनानी शासकों को निकाल-बाहर किया और स्वयं वहाँ का राजा बन गया। इसके बाद उसने अपने मंत्री चाणक्य की सलाह से लगभग ई० पू० ३२१ में मगध पर आक्रमण

किया। उसका यह आक्रमण सफल हुआ। नंद राजा हारा और लड़ाई में मारा गया। इस प्रकार नन्दों को उखाड़ कर चंद्रगुप्त ने मगध में अपने मौर्य-वंश का राज्य स्थापित किया।

चंद्रगुप्त मौर्य—चंद्रगुप्त संभवतया क्षत्रिय मौर्य-वंश का था जिस कारण उसका घराना मौर्य-वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह बहुत ही पराक्रमी, वीर और प्रतापी पुरुष था।

चंद्रगुप्त ने कुछ ही समय में पंजाब से ले कर मगध तक सारे उत्तरी भारत पर अधिकार कर लिया। फिर उसने पश्चिमी भारत के मालवा, गुजरात, काठियावाड़ और सिंध को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। इसके बाद उसने ६ लाख सैनिकों की एक बड़ी सेना ले कर विंध्य-पर्वत को पार कर शायद कोंकण के मार्ग से दक्षिणी भारत पर भी आक्रमण किया और संभवतः मद्रास तथा मैसूर के चित्तलदुर्ग प्रांत तक अपना राज्य फैला लिया। इस तरह समस्त उत्तरी, पश्चिमी और दक्षिणी भारत पर कब्जा करनेवाला हमारे इतिहास में वह पहला राजा हुआ है। इसी कारण उसे भारत का सबसे पहला एकछत्र सम्राट मानते हैं।

सिल्यूकस से युद्ध—सिकंदर की मृत्यु के बाद चंद्रगुप्त ने यूनानियों को मार भगाया और पंजाब तथा सिंध पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। सिकंदर के सेनापति सिल्यूकस को चंद्रगुप्त का यह कार्य बहुत बुरा

लगा। अतः उसने सिकंदर के जीते हुए पंजाब और सिंध प्रांत पर फिर से कब्जा करने का निश्चय किया। इस प्रयोजन से ई० पू० ३०५ में वह भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त की ओर बढ़ा। इधर चंद्रगुप्त भी चौकन्ना था। लड़ने-भिड़ने से वह घबराता न था; इसलिए सिल्यूकस को आता देख वह भी सेना ले कर फौरन उसे रोकने को आगे बढ़ा। वीर और साहसी चंद्रगुप्त के सामने यूनानी टिक न सके। सिल्यूकस को अपनी जान बचाने के लिए भारत के सम्राट से संधि कर लेनी पड़ी। संधि में सिल्यूकस ने चंद्रगुप्त को हिरात, कंधार, काबुल तथा बलूचिस्तान के प्रांत दे दिये। उसने एक यवन-राजकुमारी (जो शायद उसकी बेटी थी) का विवाह भी चंद्रगुप्त से कर दिया और अपने एक राजदूत मेगस्थनीज को मगध के दरबार में रहने के लिए पाटलिपुत्र भेजा। इस तरह दोस्ती और रिश्ता हो जाने पर चंद्रगुप्त ने भी ५०० हाथी उपहार-स्वरूप सिल्यूकस को दिये। चंद्रगुप्त की इस विजय से यूनानी भी अब उसका सिक्का मानने लगे।

योग्य शासक चंद्रगुप्त—चंद्रगुप्त योद्धा और वीर ही न था वह शासन और प्रजा का पालन करने में भी कुशल तथा योग्य था। मेगस्थनीज ने लिखा है कि राजा प्रजा की हर एक बात का खयाल रखता था। राजधानी पाटलिपुत्र का प्रबंध बहुत अच्छा था। राजा किसानों का बहुत खयाल रखता था। खेती की उन्नति के लिए राज्य में

सिंचाई के लिए नहरें, तालाव तथा झीलें बनी हुई थीं।

प्रजा को कोई दुष्ट, चोर, डाकू, वदमाश सता न पाये—इसके लिए चंद्रगुप्त ने कठोर कानून बना रखे थे। छोटी-मोटी चोरी तक के लिए फाँसी की सजा दी जाती थी। ऐसे कड़े कानून के डर से चोरों की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि कहीं से छोटी-सी चीज भी उठा कर ले जायँ। चोरों और वदमाशों के लिए चंद्रगुप्त का नाम ही काफी था; इसीलिए कहते हैं कि उसके समय में लोग घरों में ताला तक नहीं लगाते थे। इसमें शक नहीं कि चंद्रगुप्त मौर्य वहुत वड़ा विजेता, वहादुर और अत्यंत योग्य शासक था। उसके राज्य में प्रजा की दशा बहुत अच्छी थी। सव लोग सुख की नींद सोते थे। इस प्रतापी सम्राट की मृत्यु ई० पू० २९७ में हुई। उसने लगभग २४ वर्ष तक राज्य किया।

सम्राट विंदुसार—चंद्रगुप्त के वाद उसका वेटा विंदुसार राजा हुआ। उसके वारे में हमें वहुत कम वातें मालूम हैं, किंतु उसने अपने पिता के राज्य को सुरक्षित रखा और संभवतः वहुत-से नये देशों को जीत कर भी अपने राज्य में मिलाया। संभवतया अनेक शत्रु राजाओं को उखाड फेंकने के ही कारण उसे 'अमित्रघात' भी कहते हैं। अपने पिता की तरह उसने भी सिल्यूकस के उत्तराधिकारी सीरिया के राजा के साथ मैत्री-संबंध कायम रखा, लेकिन उसके संबंध का पूरा वृत्तांत क्रमवद्धरूप से हमें मालूम नहीं हो सका है। उसने लगभग २५ वर्ष राज्य किया। लगभग

ई० पू० २७३ में उसकी मृत्यु हो गयी। तब उसका पुत्र जगत्-प्रसिद्ध अशोक पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठा, लेकिन समुचित रूप से उसका राज्याभिषेक चार वर्ष बाद हुआ।

सम्राट अशोक—अशोक अपने दादा चंद्रगुप्त की तरह बड़ा वीर और योद्धा था। भारत का कलिंग-प्रदेश अभी तक मौर्य-साम्राज्य के अधीन नहीं हुआ था। अशोक ने उसे भी जीतकर अपने राज्य में मिला लिया।

कलिंग पर आक्रमण—मौर्य-साम्राज्य के दक्षिण-पूर्व में कलिंग नाम का एक शक्तिशाली राज्य था। इस राज्य ने मौर्य राजाओं की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। अतः अशोक ने कलिंग को दबाने के लिए आक्रमण कर दिया। कलिंग के वीर राजा ने पूरी शक्ति के साथ अशोक का मुकाबला किया, लेकिन भारत के सम्राट अशोक का सामना छोटा-सा कलिंग कहाँ तक करता। अतः कलिंगवाले बड़ी बहादुरी से लड़ने पर भी अंत में हार गये। यह लड़ाई सचमुच इतनी भयंकर हुई कि सारा रणक्षेत्र लाशों से पट गया और खून की नदियाँ बह चलीं। इस युद्ध में कहते हैं, लगभग एक लाख आदमी मारे गये और करीब डेढ़ लाख कैद हुए। इस तरह भयंकर खून-खराबी के बाद ही कलिंग पर अशोक का अधिकार हुआ।

कलिंग जीत तो लिया गया, पर अशोक को अब इससे खुशी के बदले दुःख ही हुआ। उसे लगा कि स्वार्थ कितना भयंकर होता है। वह सोचने लगा अगर वह
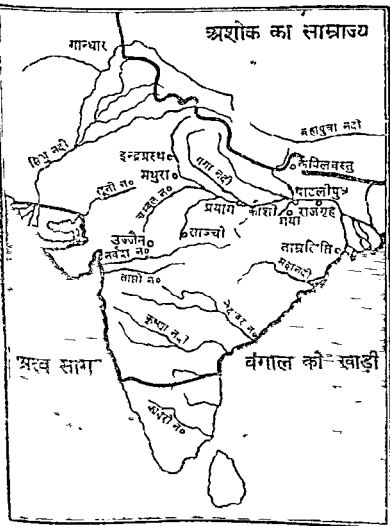
अपने स्वार्थ के लिए कलिंग पर चढ़ाई न करता तो इतने आदमी क्यों मारे जाते! अतः वह अपनी करनी पर पछताने लगा। प्रायश्चित्त के तौर पर उसने अब कभी युद्ध न करने की प्रतिज्ञा ली। किसी देश पर अपने स्वार्थ के लिए चढ़ाई करने का इरादा ही उसने छोड़ दिया। उसने अब मनुष्य और जीव मात्र की सेवा करने का व्रत लिया। उसकी धार्मिक भावना अब तीव्र हो गयी और वह भगवान बुद्ध का अनुयायी बन गया।

धर्मी सम्राट अशोक—अफ़गानिस्तान और बलूचिस्तान से ले कर सारा उत्तरी और लगभग सारा दक्षिणी भारत अशोक के अधीन था। दक्षिण के केवल तीन छोटे-छोटे राज्य—चेर, चोल और पांड्य उसके अधीन नहीं थे। इतना बड़ा सम्राट होने पर भी अभिमान उसे छू तक नहीं गया था। कलिंग-युद्ध के बाद ही बौद्ध-धर्म पर उसकी आस्था बढ़ गयी और बौद्ध-धर्म को अंगीकार कर भगवान बुद्ध की तरह उसने जीव मात्र की सेवा का मार्ग अपना लिया। बौद्ध भिक्षु उपगुप्त ने अशोक की धार्मिक भावनाओं को और भी आगे बढ़ाया।

गौतम बुद्ध की सेवा और अहिंसा का व्रत लेने पर सब से पहला काम अशोक ने यह किया कि भोजनालय में मांस के लिए जो हजारों जानवर मारे जाते थे उनका वध उसने धीरे-धीरे बन्द करा दिया। उसने यह भी आज्ञा निकाली कि धार्मिक कार्यों के लिए पशुओं की बलि देना

रोक दिया जाय। उसने राज्य के बड़े-बड़े अफसरों को आज्ञा दी कि वे जगह-जगह घूम कर जनता में धर्म और सदाचार का प्रचार करें। इतना ही नहीं, अशोक स्वयं भी राज्य का दौरा करने लगा। इन दौरों में वह लोगों को धर्म की शिक्षा दिया करता और बौद्ध-तीर्थस्थानों का दर्शन किया करता था। लोगों में धर्म का प्रचार और जनता की सेवा करना—ये दो ही अब अशोक के मुख्य कर्त्तव्य हो गये थे।

अशोक की शिक्षा—अशोक बौद्ध था, लेकिन बुद्ध-धर्म का कट्टर और अंध-पक्षपाती न था। वह सभी धर्मों का समान रूप से आदर किया करता था। ब्राह्मण, जैन और दूसरे धर्म के माननेवालों का भी वह आदर करता और उन्हें दान देता था। धार्मिक या सांप्रदायिक पक्षपात उसे छू तक नहीं गया था। उसका कहना था कि सभी धर्म अच्छे हैं; क्योंकि सभी धर्मों में कुछ-न-कुछ अच्छी बातें होती हैं। अपनी प्रजा को भी वह इसी तरह दूसरे धर्मों के प्रति सहनशील बनने और आदर-भाव रखने का उपदेश दिया करता था।

जनता को वह ऐसी शिक्षाएँ देता था जिनसे लोगों में सदाचार और गुणों की बढ़ती हो और बुरे विचार उनके हृदय से निकल जायँ

उसकी शिक्षा थी कि माता-पिता, मित्र, परिचित और सगे-संबंधियों की सेवा करो, ब्राह्मण और साधुओं का आदर करो, जीवों पर दया करो, दीन-दुःखियों को दान दो,

सच बोलो, नम्र बनो, किसी को मारो या सताओ नहीं अर्थात अहिंसा का व्रत लो, नौकरों के साथ अच्छा बर्ताव करो, ज्यादा खर्च न करो और न ज्यादा दौलत अपने पास जमा करो

अशोक ने जनता के हित के लिए, शिलाओं और स्तंभों पर भी इन उपदेशों को खुदवाया। इस प्रकार के स्तंभ

अशोक का एक शिला लेख

और शिलाएँ भारत में कई जगहों पर मिलती हैं। इलाहाबाद के किले में भी अशोक के लेख का एक स्तंभ खड़ा है।

विदेशों में धर्म-प्रचार—अशोक ने अपने धार्मिक उपदेशों का प्रचार केवल भारत में ही नहीं किया, बल्कि धर्म-प्रचार के लिए विदेशों में भी अपने धर्म-दूत भेजे।
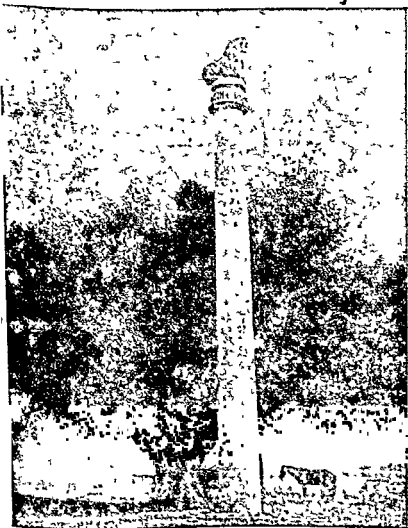
अशोक की लाट

उसके धर्म-दूत भारत से हिमालय प्रदेश, मिस्र, ब्रह्मा तथा लंका तक गये। वहाँपर उन्होंने बौद्ध-धर्म और अशोक की शिक्षा का प्रचार किया। अशोक ने अपने लड़के महेंद्र और लड़की संघमित्रा को भी धर्म-प्रचार के लिए लंका भेजा। इस धर्म-प्रचार को अशोक धर्म-विजय कहा करते थे। इस धर्म-विजय में उन्हें देश और विदेशों में खूब सफलता मिली और अनगिनत लोग यहाँ और बाहर बौद्ध-धर्म के अनुयायी बन गये। बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए अशोक ने अपनी राजधानी पाटलिपुत्र में बौद्ध-धर्म की एक सभा भी की जिसमें अनेक विद्वानों और साधुओं ने भाग लिया था।

प्रजा-भक्त अशोक—अशोक प्रजा के हित और सुख के लिए अपने को उत्तरदायी समझता था। अपनी प्रजा को वह उसी तरह प्यार करता था जैसे एक पिता अपने बच्चों को प्यार करता है। उसने अपने एक लेख में इस प्रकार लिखा है—

'सारी प्रजा मेरे बच्चों के तुल्य है। जिस प्रकार मेरी अभिलाषा है कि मेरे पुत्र इस लोक और परलोक दोनों में सुखी हों, उसी प्रकार मैं सब मनुष्यों के प्रति चाहता हूँ'।

निस्संदेह सम्राट अशोक ने अपने इन वचनों का पालन भी किया। उसके राज्य में कोई अधिकारी घूस नहीं ले सकता था, न किसी को बिना अपराध के जेल भेजा जा सकता था। अशोक ने राज्य के अफसरों को आज्ञा दे

रखी थी कि वे अपने को प्रजा का सेवक समझें और कोई ऐसा काम न करें जिससे प्रजा को कष्ट पहुँचे ।

धर्म का राज्य—अशोक का राज्य वास्तव में राम की तरह धर्म का राज्य था। प्रजा के कामों के लिए वह हर समय तैयार रहता था। उसने कह दिया था कि प्रजा का कोई भी आदमी जब जी चाहे अपनी फरियाद उसके पास ला सकता है। प्रजा के सुख के लिए उसने अनेक सुन्दर सड़कें बनवायीं जिनके दोनों ओर फल और छायादार आम के पेड़ लगे हुए थे। सड़क पर यात्रियों के आराम के लिए उसने आध-आध कोस पर कुएँ और धर्मशालाएँ भी बनवा दी थीं। उसने मनुष्य और पशु दोनों के लिए ऐसे चिकित्सालय बनवा दिये थे जिनमें मुफ्त इलाज होता था।

मनुष्य मात्र का सेवक—अशोक ने सबके हित के ये कार्य अपने ही यहाँ नहीं बल्कि विदेशों में भी किये; इसीलिए अशोक मनुष्य मात्र और प्राणि मात्र का सेवक

और कल्याण करनेवाला कहा जाता है। अपनी महान सेवाओं के कारण वह संसार के तमाम राजाओं में सबसे बड़ा और महान माना जाता है। आज तक संसार उसके उत्तम कार्यों की प्रशंसा करता है। उसकी इस सेवा का ही परिणाम है कि आज हमारी सरकार ने भी उसके बनाये सिंह-स्तम्भ को, जो सारनाथ में रखा हुआ है, अपना राज-चिह्न बना लिया है।

इस महान सम्राट ने लगभग ४० वर्ष तक राज्य किया और ई० पू० २३२ में परलोक सिधार गया।

मौर्य-साम्राज्य का अंत—अशोक की मृत्यु के बाद उसके लड़के-पोते आदि योग्य नहीं निकले। परिणाम यह हुआ कि उसके उत्तराधिकारी राज्य की रक्षा न कर सके। धीरे-धीरे विशाल मौर्य-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो कर नष्ट हो गया। मौर्य-वंश का आखिरी निकम्मा राजा बृहद्रथ हुआ। ई० पू० १८५ के लगभग उसके मन्त्री और सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने उसे मार डाला। इस तरह मौर्य राजा को खत्म कर के पुष्यमित्र ने अब मगध में अपने शुंग-वंश का राज्य स्थापित किया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. नंद-वंश का अन्त कब और कैसे हुआ?
२. चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन किस प्रकार का था?
३. अशोक को प्रजा भक्त क्यों कहते हैं?
४. अशोक की शिक्षाएँ क्या थीं?
५. मौर्य-साम्राज्य का अन्त कैसे हुआ?

———

अध्याय १०

मौर्य-साम्राज्य के बाद भारत की दशा

बृहद्रथ के बाद मौर्य-साम्राज्य के समाप्त होने पर, जो भारत पहले चन्द्रगुप्त और अशोक के समय एक शासन-सूत्र में बँधा था, कई राज्यों में बँट गया। मौर्य साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने से भारत में प्रमुखतः चार नये राज्य कायम हुए—

१—मगध में शुंग, २—कलिंग में चेदि, ३—दक्षिण में सातवाहन तथा ४—पश्चिमोत्तर और पंजाब में यूनानी। इस समय का इतिहास विशेषतया इन्हीं चार राज्यों का इतिहास है। नीचे हम इन चारों का हाल बतलायँगे।

मगध का शुङ्ग-वंश—शुंग-वंश की स्थापना करनेवाला पुष्यमित्र शुंग था। इसने अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ को मार कर मगध के राज्य पर कब्जा किया था। पुष्यमित्र शुंग ब्राह्मण था। लगभग ई० पू० १८५ में यह राजा हुआ।

पुष्यमित्र बड़ा वीर और योद्धा था। उसके समय में उत्तरी-पश्चिमी भारत के एक यूनानी राजा ने, जिसका नाम शायद डिमिट्रिग्रस था, पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया, किन्तु पुष्यमित्र ने उसे हरा कर भगा दिया। इसके अलावा उसने कई अन्य राजाओं को भी हराया और विजयी हुआ।

अपनी विजय के उपलक्ष्य में उसने दो बार अश्वमेध यज्ञ किये, जिन्हें चक्रवर्ती राजा ही कर सकता था।

पुष्यमित्र वैदिक ब्राह्मण-धर्म को मानता था। अतः उसके समय में वैदिक-धर्म और यज्ञ आदि कर्मों का प्रचार बढ़ा। संस्कृत भाषा को भी उसने प्रोत्साहन दिया। पतंजलि नाम का संस्कृत का प्रसिद्ध विद्वान् उसी के समय में हुआ था। पतंजलि ने योगसूत्र तथा पाणिनि के संस्कृत-व्याकरण पर बहुत सुन्दर भाष्य लिखा है। पुष्यमित्र ने लगभग ३६ वर्ष राज्य किया। लगभग ई० पू० १४९ में उसका देहान्त हुआ।

पुष्यमित्र के बाद उसके उत्तराधिकारी अधिकतर कमजोर और अयोग्य निकले। इस वंश का आखिरी राजा देवभूति हुआ। वह बड़ा निकम्मा और विलासी था। लगभग ई० पू० ७२ में उसके मंत्री वसुदेव कण्व ने उसे मार डाला और मगध पर कब्जा कर लिया।

कण्व-वंश ने मगध पर लगभग ई० पू० २७ तक राज्य किया। इस वंश के राजा भी ब्राह्मण थे। इस वंश के राज्य का अन्त सातवाहन-वंश के राजा ने किया।

(२) कलिंग का चेदि-वंश—अशोक की मृत्यु के कुछ समय बाद, ईसा से १०० वर्ष पूर्व, कलिंग का प्रांत फिर स्वतन्त्र हो गया। इस समय यहाँ पर चेदि-वंश के राजा राज करते थे। इस वंश के राजाओं में खारवेल बहुत वीर और प्रसिद्ध हुआ है। यह बहुत बड़ा विद्वान

और शास्त्रों का जाननेवाला था। उसने मगध के किसी राजा को लड़ाई मे हराया था। दक्षिण में घुस कर उसने सातवाहन राजा को भी परास्त किया। वह जैन-धर्म को मानता था, लेकिन उसके बाद के चेदि राजाओं का कोई पता नहीं चलता।

(३) दक्षिण का सातवाहन वंश—सातवाहन राजा भी ब्राह्मण थे। इस वंश के राजाओं ने दक्षिण में लगभग ३०० वर्ष तक राज्य किया। इनमें अनेक प्रसिद्ध राजा हुए। इनके राज्य में महाराष्ट्र और काठियावाड़ आदि भी शामिल थे। दक्षिण में गोदावरी और तुंगभद्रा तक इनका राज्य फैला हुआ था। इस वंश के राजाओं ने वैदिक ब्राह्मण-धर्म को बढ़ावा दिया, लेकिन दूसरे धर्मों का उन्होंने कभी तिरस्कार नहीं किया।

इनके समय में दक्षिणी भारत ने विद्या और कला-कौशल में खूब उन्नति की। व्यापार भी उस समय उन्नत अवस्था में था। दक्षिणी भारत के व्यापारी लोग जहाजों में माल लाद कर अरब, ईरान और मिस्र आदि देशों को ले जाया करते थे। इन्हीं कारणों से सातवाहन राजाओं की हमारे इतिहास में बहुत प्रशंसा की गयी है।

(४) पश्चिमोत्तर भारत और पंजाब के यवन शासक—चंद्रगुप्त ने जब ई० पू० ३०४ में यूनानी शासक सिल्यूकस को हराया था तब से वे लोग भारत पर आक्रमण करने से डरते थे, लेकिन अशोक के मरने के बाद जब

उन्हें भारत की कमजोरी का हाल मालूम हुआ तो उन्होंने फिर हमले शुरू कर दिये। इस समय जिन्होंने हमले किये वे वेक्ट्रिया के दो यवन शासक थे—एक, यूथिडीमूस का लड़का डिमिट्रिअस और दूसरा, युक्रेटाइडीज। वे दोनों भिन्न-भिन्न वंशों के थे। उनमें से यूक्रेटाइडीज पंजाब से आगे न बढ़ पाया, लेकिन, कुछ विद्वानों के अनुसार डिमिट्रिअस पंचाल तथा साकेत को जीतता हुआ मगध तक बढ़ गया था।

यूथिडीमूस के वंशजों का राज्य साकल या स्यालकोट में था। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा मिलिंद या मैनेंडर हुआ। इसने पंजाब और सिंध से ले कर काठियावाड़ तक अपना राज्य फैलाया। यह बौद्ध-धर्म को मानता था। इसकी राजधानी बहुत सुन्दर और धन-धान्य से परिपूर्ण थी। इस वंश के राजाओं ने लगभग ई० पू० १६० से ई० पू० १०० तक राज्य किया। फिर शकों ने उनका अन्त कर दिया।

यूक्रेट्राइडीज के वंश का राज्य भी पश्चिमोत्तर भारत में था। इनका राज्य अफ़गानिस्तान से ले कर तक्षशिला तक फैला हुआ था। इस वंश के राजाओं ने ई० पू० पहली सदी से लगभग २५ ई० सन् तक राज्य किया। इस वंश का आखिरी राजा हार्मिअस हुआ जिसको हरा कर कुशानों ने पश्चिमोत्तर भारत में अपना राज्य कायम किया।

शक और पह्लव—शक या सिदियन एक घूमने-

फिरनेवाली खानाबदोश जाति के लोग थे। ये पहले मध्य-एशिया में रहते थे। लगभग ई० पू० दूसरी सदी में ये लोग बेक्ट्रिया में आ कर बस गये। कुछ समय बाद बेक्ट्रिया को छोड़ कर शक लोग हिन्दूकुश पर्वत पार कर शकस्थान (सीस्तान) होते हुए भारत में घुस आये और यहां पर धीरे-धीरे उन्होंने कई स्थानों में अपने राज्य स्थापित कर लिये।

शकों में सबसे पहला राजा मोगा हुआ। इसने ई० पू० ७५ में यूनानी शासकों को हरा कर तक्षशिला और साकल के प्रांत उनसे छीन लिये। इसके बाद मथुरा और काठियावाड़ पर भी शक राजाओं ने अधिकार कर लिया। तक्षशिला, मथुरा और काठियावाड़ में शक राजाओं के गवर्नर या क्षत्रप राज्य करते थे।

शक क्षत्रपों में काठियावाड़, गुजरात और मालवा के क्षत्रप बहुत विख्यात हुए हैं। यहाँ के क्षत्रप शासकों में रुद्रदमन सबसे प्रतापी हुआ। इसने सातवाहनों से महाराष्ट्र प्रदेश छीना और उसे अपने राज्य में मिला लिया। यह हिंदू-धर्म को मानता था। संस्कृत भाषा को उसने राज्य-भाषा बनाया था। इन क्षत्रपों में और भी कई शासक हुए। बहुत दिनों तक राज्य करने के बाद अंत में गुप्त राजाओं ने इन शक-क्षत्रपों को समाप्त कर दिया।

शक राजा मोगा के बाद पह्लवों ने शकों की जगह

पश्चिमोत्तर भारत पर कब्जा कर लिया। पह्लव राजाओं में गोडोफार्निस बहुत विख्यात राजा हुआ। इसने ईसाई-धर्म को प्रश्रय दिया था। इसने लगभग १६ से ४५ ई० सन् तक राज्य किया। इसके बाद कुशान राजा पह्लवों को समाप्त कर स्वयं राज्य करने लगे।

कुशान जाति—कुशान जाति शकों की तरह ही एक घूमने-फिरनेवाली जाति थी। शुरू में इस जाति के लोग चीन के पश्चिमोत्तर भाग में रहा करते थे। चीनी भाषा में इस जाति के लोगों को यूची कहते थे। ईसा से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले इन्हें अपना मूलप्रदेश छोड़ना पड़ा और ये आमू नदी की घाटी और बल्ख (वैक्ट्रिया) में आ कर बस गये। यूचियों की इस समय पांच शाखाएँ थीं और पांचों के अलग-अलग राज्य थे। इनमें से एक शाखा का नाम कुशान था। पहली सदी ई० सन् में कुशान शाखा के राजा शक्तिशाली हो गये। उन्होंने अपनी जाति की चार अन्य शाखाओं पर भी अधिकार जमा लिया। कुशानों में पहला शक्तिशाली राजा कुजूल कदफिस हुआ। इसी के समय में कुशानों ने हिंदूकुश को पार कर काबुल, गांधार, पंजाब आदि पर आक्रमण किया और यूनानियों, शकों तथा पह्लवों को हरा कर पश्चिमोत्तर भारत में अपना राज्य कायम कर लिया। इन कुशान राजाओं में सबसे बड़ा प्रतापी, महान और शक्तिशाली राजा कनिष्क हुआ है।

कनिष्क ने अपनी शक्ति बढ़ा कर मगध पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में वह विजयी हुआ और पाटलिपुत्र से एक महान बौद्ध पंडित अश्वघोष को लौटते समय अपने साथ पुरुषपुर ले गया। उत्तर में उसने कश्मीर को जीत कर अपने अधीन किया। इसी प्रकार उसने भारत के अन्य प्रान्तों को भी जीता और उन्हें अपने राज्य में मिलाया। इन विजयों के कारण कनिष्क का साम्राज्य अफगानिस्तान, कश्मीर, सिंध, पंजाब, उत्तर-प्रदेश और पश्चिमी भारत में मालवा तक फैल गया।

कनिष्क ने चीन के साथ भी दो लड़ाइयाँ लड़ीं। पहली लड़ाई में तो उसकी हार हुई, लेकिन दूसरी लड़ाई में वह विजयी हुआ और चीन के प्रांत काशगर, यारकंद और खोतान पर उसका अधिकार हो गया। इतने बड़े साम्राज्य का मालिक होने पर उसने देवपुत्र की उपाधि ग्रहण की। इस महान सम्राट के काल के बारे में अनेक मत प्रचलित हैं, लेकिन सामान्यतः यह अनुमान लगाया जाता है कि वह ७८ ई० सन् में गद्दी पर बैठा था और लगभग ४१-४२ वर्ष राज्य करने के बाद १२० ई० सन् में वह परलोक सिधार गया। कहते हैं चीन को जीत कर जब वह लौट रहा था तब उसके मंत्रियों ने उसे मार डाला।

कनिष्क का धर्म और कार्य—कनिष्क बौद्ध-धर्म को मानता था। अशोक की भांति उसने भी बौद्ध-धर्म के

प्रचार के लिए बहुत उत्साह के साथ काम किया। पेशावर या पुरुषपुर में उसने एक बहुत बड़ा बौद्ध-विहार और एक लकड़ी का स्तूप बनवाया था। उसने अपने सिक्कों पर बुद्ध भगवान की मूर्ति अंकित करवा दी थी। बौद्ध-धर्म की महायान शाखा को बढ़ावा देने के लिए उसने कश्मीर में एक महासभा भी की। इस समय से महायान-संम्प्रदाय बहुत प्रबल हो चला। महायान बौद्ध-धर्म का प्रचार उत्तर भारत में ही अधिक हुआ और दक्षिण में प्राचीन हीनयान बौद्ध-धर्म अपनी जड़ें जमाये रहा।
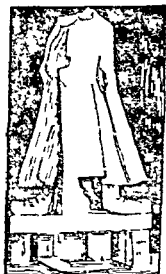
कनिष्क की टूटी मूर्ति

कनिष्क बौद्ध होते हुए भी अशोक की तरह दूसरे धर्मों का आदर और मान करता था। भगवान बुद्ध के साथ-साथ वह ईरानी, यूनानी और हिंदू देवी-देवताओं की भी पूजा किया करता था। इस सहनशीलता के कारण सब धर्मों में आपसी मेल था और विभिन्न धर्म या सम्प्रदाय का होने पर भी कोई परस्पर द्वेषभाव नहीं रखता था।

विद्या और कला—कनिष्क जैसा वीर था वैसा ही

विद्या-प्रेमी भी था। वह विद्वानों और पंडितों का बहुत आदर करता था। बौद्ध-धर्म के महान पंडित अश्वघोष और नागार्जुन उसकी राज-सभा के रत्न थे। आयुर्वेद के प्रगाढ़ पंडित चरक कनिष्क के ही राजवैद्य थे।

कनिष्क कला का भी बड़ा प्रेमी था। उसने पेशावर, तक्षशिला, कश्मीर और मथुरा आदि में बहुत सुंदर बौद्ध-विहार बनवाये। उसने बुद्ध की अनेक मूर्तियां बनवायी थीं। बौद्ध लोग इन मूर्तियों की पूजा करते थे। इन मूर्तियों और विहारों को भारत और यूनान के कलाकारों ने मिल कर बनाया था; इसलिए इनमें भाव तो भारतीय, पर बनाने का तौर-तरीका यूनानी रखा गया। इस कारण कनिष्क के जमाने की कला को यूनानी और भारतीय कला का मेल-जोल माना जाता है। इस कला का एक नाम गांधार कला भी है। इस युग की बनी हुई अनेक मूर्तियाँ मिली हैं जो देखने में बहुत सुन्दर हैं।

कनिष्क के समय में भारत का व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा था। हमारे देश के व्यापारी तब जहाजों में माल लाद कर विदेशों में जाया करते थे। भारत का व्यापार इस समय रोम से भी होता था।

कनिष्क के उत्तराधिकारी—कनिष्क के उत्तराधिकारियों में हुविष्क और वासुदेव प्रसिद्ध हुए हैं। हुविष्क महेश्वर (शिव) का भक्त था, लेकिन बुद्ध का भी ब आदर करता था। उसने कश्मीर में अपने नाम प

हुविष्कपुर नाम का एक नगर बसाया था। मथुरा में उसने एक सुन्दर बौद्ध-विहार भी बनवाया था।

हुविष्क के बाद कुशान वंश में कुछ और राजा भी हुए, लेकिन वे सब कमजोर निकले जिस कारण कुशान-राज्य धीरे-धीरे नष्ट हो गया। वासुदेव इस वंश के अन्तिम राजाओं में से था। उसके नाम से स्पष्ट है कि कुशानों ने भारतीय धर्म और संस्कृति को अब पूरी तरह अपना लिया था। कुशानों की रही-सही शक्ति को अन्त में गुप्त राजाओं ने नष्ट कर दी।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. शुंगों के बारे में आप क्या जानते हैं ?
२. खारवेल कौन था ?
३. यूथिडीमूस और यूक्रेटाइडीज के वंशजों का हाल बतलाइये।
४. शकों और पह्लवों में कौन-से प्रसिद्ध राजा हुए ?
५. कुशान कौन थे ? उनमें सबसे प्रसिद्ध राजा कौन माना जाता है ?

अध्याय ११

दक्षिण के प्राचीन राज्य

आंध्रों का अन्त—दक्षिण के सातवाहन या आंध्र-वंश का हाल आप पढ़ चुके हैं। आपको याद होगा कि सातवाहन राजाओं ने ई० पू० पहली शताब्दी से ले कर तीसरी शताब्दी ई० तक (लगभग ३०० वर्ष) राज्य किया। पहले इनका राज्य लगभग सारे दक्षिणी भारत में था, लेकिन बाद में आंध्र-प्रदेश तक सीमित हो गया था।

शायद इसीलिए सातवाहनों को तब से आन्ध्रों के नाम से पुकारा जाने लगा। दक्षिण के आन्ध्रों या सातवाहनों के राज्य को अन्त में पल्लव राजाओं ने समाप्त कर दिया।

पल्लव राजा—सातवाहनों की तरह पल्लव राजा भी ब्राह्मण-वंश के थे। इन्होंने तीसरी-चौथी शताब्दी में सातवाहनों को हरा कर दक्षिण में अपना राज्य कायम किया था। इस वंश की नींव डालनेवाला शिवस्कंद वर्मन था। पल्लव राजाओं की राजधानी कांची या कांजीवरम् थी। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने जब पल्लवों के राज्य पर धावा किया था उस समय विष्णुगोप कांची में राज्य करता था। पल्लव राजाओं ने लगभग ९वीं सदी तक राज्य किया। अन्त में दक्षिण के चालुक्य राजाओं ने उन्हें हरा कर अपने अधीन कर लिया।

पल्लव-वंश के राजा बड़े धार्मिक और योग्य थे। संस्कृत भाषा और साहित्य को उन्होंने बहुत आगे बढ़ाया। शैव-धर्म का उन्होंने दक्षिणी भारत में बहुत अधिक प्रचार किया और शिव के अनेक मन्दिर बनवाये। उनकी राजधानी कांची उनके समय में धर्म, ज्ञान और शिक्षा का केन्द्र बन गयी थी। विद्या और धर्म के विचार से कांची दक्षिण की काशी कहलाने लगी और आज भी वह काशी की तरह पवित्र मानी जाती है।

सुदूर दक्षिण के राज्य—सुदूर दक्षिण के चोल, चेर और पांड्य के राज्य बहुत प्राचीन थे। ये तीनों राज्य अशोक के समय में भी स्वतन्त्र रूप से विद्यमान थे।

चोल राजा—प्राचीन काल में चोल राजा बड़े शक्तिशाली थे। इस समय के एक चोल राजा ने लंका-विजय भी की थी। चोल-राज्य का पश्चिमी देशों के साथ बहुत व्यापार चलता था, लेकिन चौथी शताब्दी में पल्लव, पांड्य तथा चेर राजाओं ने चोल राजाओं की ताकत को तोड़ दिया। सातवीं सदी में जब ह्वेनसांग दक्षिण गया तो चोल-प्रदेश उसे उजाड़ मिला।

चेर-राज्य—चेर-राज्य अशोक के समय में एक स्वतंत्र राज्य था। चेर-राज्य का व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। लगभग आठवीं सदी तक चेर-राज्य स्वतंत्र रूप से कायम रहा, लेकिन उसके बाद पांड्यों और चोलों ने उसे नष्ट कर डाला।

पांड्य-राज्य—अशोक के समय में पांड्य-राज्य एक स्वतंत्र राज्य था। चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में रहनेवाले यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने लिखा है कि पांड्य-प्रदेश में स्त्रियाँ राज्य करती थीं। कहते हैं, कलिंग के चेदि राजा खारवेल ने पांड्य राजा को हराया था। पांड्य राजाओं का विदेश के राजाओं के साथ भी संपर्क था। कहते हैं, एक पांड्य राजा ने २० ई० पू० में अपना एक दूत-मंडल रोम के राजा के पास भेजा था। इसके अलावा प्राचीन पांड्य राजाओं का कोई अधिक वर्णन नहीं मिलता।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. पल्लव वंश का संस्थापक कौन था?
२. चोल, चेर और पांड्य राजाओं का वर्णन कीजिए।

अध्याय १२

वाकाटक और गुप्त-राजवंश

वाकाटक राजवंश—मौर्य-वंश के पतन के बाद उत्तरी भारत में बहुत समय तक कोई राष्ट्रिय शक्तिशाली राज्य न बन सका। मौर्यों के बाद मगध में पुष्य-मित्र, शुङ्ग और कण्वों ने राज्य किया था, लेकिन कण्वों के बाद मगध का पुराना गौरव नष्ट हो चला। उनके बाद ३०० वर्षों से अधिक समय तक मगध के इतिहास का बहुत कम हाल मिलता है। उत्तरी भारत की तरह दक्षिण में भी सातवाहनों के बाद कोई शक्तिशाली राज्य कायम नहीं हो सका, लेकिन तीसरी शताब्दी के अंतिम समय और चौथी के प्रारम्भ में हमारे देश में फिर दो शक्तिशाली राज्य कायम हो गये। ये राज्य वाकाटकों और गुप्तों के थे।

वाकाटकराजाओं का मूल प्रदेश बुंदेलखंड था। इनकी राजधानी शायद 'वाकाट' थी जिस कारण ये राजा वाकाटक कहलाये। ये वाकाटक राजा भी ब्राह्मण थे। इस वंश का पहला राजा विन्ध्यशक्ति हुआ। इसने अपना राज्य दक्षिण में आंध्र और बरार तक फैलाया। इसने लगभग ३५-३६ वर्ष तक राज्य किया। सन् २८४ में इस प्रतापी सम्राट् की मृत्यु हो गयी।

इस वंश के एक सम्राट रुद्रसेन द्वितीय का विवाह चंद्रगुप्त विक्रमादित्य की बेटी प्रभावती गुप्त से हुआ था। इस विवाह-सम्बन्ध से पता लगता है कि वाकाटक राजाओं का कितना मान था। इस वाकाटक सम्राट ने लगभग ३८५ से ३६५ ई० सन् तक राज्य किया। उसके बाद कई और वाकाटक राजा हुए। आखिरी वाकाटक राजा हरिसेन था जिसने लगभग ४६० से ५२० ई० तक राज्य किया। उसके बाद यह वंश दक्षिण के चालुक्य राजाओं द्वारा समाप्त कर दिया गया।

वाकाटकों का स्वदेश-प्रेम—वाकाटक राजाओं ने भारतीय संस्कृति और धर्म को फैलाने में बहुत काम किया। उन्होंने संस्कृत को राजकीय भाषा बनाया। उनका प्रोत्साहन पा कर संस्कृत भाषा उन्नति करने लगी और उसमें अच्छी-से-अच्छी पुस्तकों की रचना होने लगी। अपने राष्ट्रिय प्रेम को प्रकट करने के लिए उन्होंने गंगा और यमुना को अपना राजकीय चिन्ह बनाया।

ये राजा शिव के परम भक्त थे; इसलिए उनके समय में शैव-धर्म का बहुत प्रचार हुआ और शिव के कई मंदिर बने।

गुप्त-राजवंश—गुप्त-राजवंश की स्थापना लगभग तीसरी सदी के अन्त में मगध में हुई। इसकी वास्तविक स्थापना करनेवाला चंद्रगुप्त प्रथम था जिसने लगभग ३१६ से ३३५ ई० तक राज्य किया। उसका विवाह लिच्छवि वंश की एक राजकुमारी से हुआ था। लिच्छवियों

के साथ संबंध होने से चंद्रगुप्त की शक्ति बढ़ गयी और उसने अपना राज्य पाटलिपुत्र से अयोध्या और प्रयाग तक फैला लिया। इतने बड़े राज्य का स्वामी होने पर वह अब महाराजाधिराज कहलाने लगा। उसने गद्दी पर बैठने के समय अपने नाम से एक नया संवत् भी चलाया जो गुप्त संवत् के नाम से प्रसिद्ध है। उसके बाद उसका लड़का समुद्रगुप्त सिंहासन पर बैठा।

महापराक्रमी समुद्रगुप्त—गुप्त राजाओं में समुद्रगुप्त बहुत बड़ा योद्धा और पराक्रमी हुआ है। उसके जैसे वीर और विजयी राजा बहुत कम हुए हैं। गद्दी पर बैठते ही वह सारे भारत को जीतने के लिए सेना सजा कर निकल पड़ा। उसने उत्तरी भारत के अनेक राजाओं को हराया और उनके राज्यों को गुप्त-साम्राज्य में मिला लिया।

इसके बाद समुद्रगुप्त ने मध्यप्रदेश में जबलपुर-इलाके के जंगली राजाओं को हरा कर उनका राज्य भी अपने राज्य में मिला लिया। मध्यप्रदेश से आगे बढ़ता हुआ वह उड़ीसा के किनारे-किनारे गंजाम और विजगापट्टम होता हुआ पलार नदी के किनारे कांची तक पहुँचा। कांची में उस समय पल्लव राजा विष्णुगोप राज्य करता था। उसने समुद्रगुप्त का मुकाबला किया, लेकिन हार गया। दक्षिण के अन्य राजाओं ने भी समुद्रगुप्त के बढ़ाव को रोकने का प्रयत्न किया, लेकिन सफल न हो सके। समुद्रगुप्त

निरंकुश और लालची राजा नहीं था; इसलिए जीतने के बाद उसने दक्षिण के राजाओं के राज्य उन्हीं को लौटा दिये।

समुद्रगुप्त की इन विजयों से उत्तरी भारत की सीमा पर के राजा बहुत भयभीत हो उठे। अतः उन्होंने बिना लड़े ही स्वयं समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली और उसे कर देने लगे। इस तरह स्वयं अधीनता स्वीकार करनेवालों में पूर्वी बंगाल, आसाम, नेपाल, गढ़वाल और कुमायूँ के राजा तथा पंजाब, राजपूताना और मालवा के प्रजातन्त्र राज्य थे। लंका तथा पूर्वीय द्वीप-समूह के राजाओं ने भी समुद्रगुप्त के प्रभाव में आ कर उसके दरबार में उपहार सहित अपने राजदूत भेजे। समुद्रगुप्त की इन विजयों का विवरण अशोक के इलाहाबादवाले स्तंभ पर खुदा है। इन विजयों के फलस्वरूप गुप्तों का राज्य उत्तर में हिमालय से ले कर दक्षिण में नर्मदा और पूर्व में बंगाल तक फैल गया।

समुद्रगुप्त ने अपनी विजयों के उपलक्ष्य में अश्वमेध यज्ञ किया और ब्राह्मणों को हजारों गायें तथा सोने के सिक्के दान में दिये।

समुद्रगुप्त का चरित्र—समुद्रगुप्त एक महान योद्धा और विजेता था, लेकिन उसका हृदय अत्यन्त कोमल था। गरीब और दुःखीजनों को देख कर उसका हृदय पसीज उठता था। वह ऐसे लोगों के दुःखों को दूर करने का

सदैव प्रयत्न किया करता था। अपनी प्रजा को वह बहुत चाहता और प्यार करता था। उसका शासन प्रजा के हित के लिए था। प्रजा को सुखी और समृद्ध बनाना ही उसके शासन का ध्येय था।

समुद्रगुप्त का सिक्का

समुद्रगुप्त साहित्य और संगीत का भी बड़ा प्रेमी था। वह कवियों का आदर करता और स्वयं भी कविता किया करता था। उसके समय के विद्वान उसे 'कविराज' कहा करते थे। संगीत का भी वह प्रेमी और अच्छा ज्ञाता था। कहते हैं, वीणा बजाने में कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। शास्त्रों का वह बहुत बड़ा ज्ञाता था।

कोई गुण ऐसे न थे, जो उसमें न हों। वह वीर, राजनीतिज्ञ, कवि, संगीतज्ञ, शास्त्रों का ज्ञाता, उदार, दानी और प्रजा का सच्चा हितैषी तथा रक्षक था। ऐसे सर्वगुण संपन्न राजा कम हुआ करते हैं। इस महान सम्राट ने लगभग सन् ३३५ से ३८० ई० तक बड़ी योग्यता और कुशलता के साथ शासन किया।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य—समुद्रगुप्त के बाद उसका लड़का चन्द्रगुप्त द्वितीय सम्राट हुआ। उसने अपने को योग्य पिता का योग्य पुत्र सिद्ध किया। उसने लगभग सन् ३८० से ४१३ तक, करीब ३३ वर्ष राज्य किया।

अपने पिता की तरह चंद्रगुप्त भी वीर योद्धा और विजेता था। उसने थोड़े ही समय के भीतर मालवा, गुजरात और सौराष्ट्र के शक शासकों को हरा कर उनका राज्य अपने राज्य में मिला लिया।

राजनीति-कुशल चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपनी बेटी प्रभावती का विवाह वाकाटक राजा रुद्रसेन से किया और उसे अपना मित्र बना लिया। वाकाटक ताकतवर राजा थे; इसलिए उनकी मित्रता चंद्रगुप्त के लिए मालवा, गुजरात, आदि के शकों को हराने में सहायक हुई।

मेहरौली-लेख से मालूम होता है कि चंद्रगुप्त द्वितीय ने पंजाब और अफगानिस्तान को पार कर वाह्लिकों के प्रदेश बल्ख (बैक्ट्रिया) पर भी आक्रमण किया और वहाँ अपनी विजय-पताका फहरायी।

इन विजयों के उपलक्ष्य में उसने 'विक्रमादित्य' अर्थात वीरता सूर्य की उपाधि धारण की। इसी कारण चंद्रगुप्त द्वितीय को
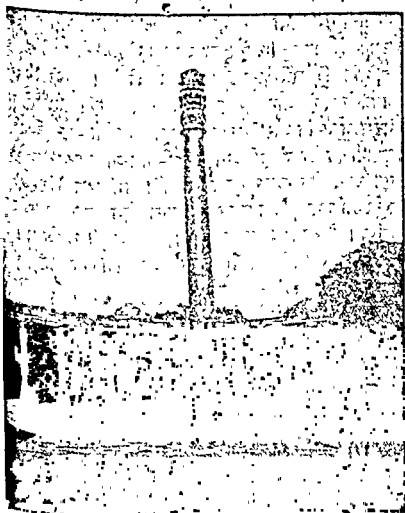
'चंद्र' (चंद्रगुप्त विक्रमादित्य) का मेहरौली-स्तंभ

चंद्रगुप्त विक्रमादित्य भी कहते हैं। विजेता के नाते संभवतः उसने भी अपने पिता की भाँति अश्वमेध यज्ञ किया था।

धार्मिक और विद्या-प्रेमी चंद्रगुप्त—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य अपने पिता के समान ही योग्य शासक, विद्या-प्रेमी तथा वैष्णव-धर्म का माननेवाला था। उसके दरबार में विद्वानों का जमघट रहा करता था। कहते हैं, महाकवि कालिदास उसी के राजकवि थे। कालिदास ने बहुत-से अच्छे और सुन्दर नाटक तथा काव्य लिखे हैं। महाराज दुष्यंत और उनकी प्रेमिका अथवा पत्नी शकुन्तला की कहानी को ले कर कालिदास ने 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' नामक एक बहुत ही सुन्दर नाटक लिखा है। हम आपको बतला चुके हैं कि भरत के नाम पर ही हमारा देश भारतवर्ष कहलाया। ये भरत दुष्यंत और शकुन्तला के ही लड़के थे। कालिदास ने 'अभिज्ञान-शाकुंतलम्' के अलावा और भी कई सुंदर काव्यों की रचना की है।

चीनी यात्री फाहियान—चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल में फाहियान नाम का एक चीनी यात्री भारत आया। विक्रमादित्य की राजधानी में वह बहुत दिन ठहरा। उसने पाटलिपुत्र और अन्य नगरों की बड़ी प्रशंसा लिखी है। उसने कहा है कि यहाँ के नगर भरे-पूरे एवं समृद्धशाली थे। गरीबी देखने को मुश्किल से मिलती थी। लोग धनधान्य से पूर्ण थे और सुख का जीवन बिताते थे।

फाहियान ने लिखा है कि यहाँ के लोग अहिंसा के माननेवाले थे। किसी को सताना या दुःख देना वे पाप समझते थे और शराब, लहसुन तथा प्याज छूते तक नहीं थे।

अपराधियों को सख्त दंड नहीं दिये जाते थे। फाँसी की सजा तो उठा ही दी गयी थी। राज्य में चोर और डाकुओं का कहीं कोई डर न था।

सुशासक, प्रजा का सेवक और विद्या-प्रेमी होने के कारण विक्रमादित्य का नाम आज भी भारत के लोगों की जिह्वा पर रहता है। लोग उसके संबंध की अनेक सुन्दर कहानियाँ और वृत्तान्त सुना करते हैं।

प्रतापी चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने पाटलिपुत्र के अलावा अयोध्या और उज्जैन को भी अपनी राजधानी बनाया।

चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के उत्तराधिकारी—

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के बाद उसका लड़का कुमारगुप्त प्रथम गद्दी पर बैठा। उसने लगभग सन् ४१३ से ४५५ ई० तक राज्य किया। उसके शासन-काल के अंतिम भाग में हूणों और पुष्यमित्रों ने गुप्त-साम्राज्य पर विध्वंसक आक्रमण किये। किंतु कुमारगुप्त के बलवान बेटे और उत्तराधिकारी स्कंदगुप्त ने उन्हें हरा कर गुप्त-साम्राज्य को नष्ट होने से बचा लिया। हूण कुशानों की भाँति मध्य-एशिया की ही एक जाति थी और वहीं से वह योरप तथा एशिया में फैली। हूण लोग काबुल के रास्ते हमारे देश में घुसे थे, लेकिन सन् ४५५ ई० में स्कंदगुप्त से हारने पर वे उसके जीवन काल तक दुबारा भारत पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सके।

स्कंदगुप्त ने लगभग ई० सन् ४५५ से ले कर ४६७ ई० तक राज्य किया। स्कंदगुप्त के बाद हूणों के फिर निरंतर आक्रमण

होने लगे। दुर्भाग्यसे गुप्त राजाओंमें अब कोई ऐसा पराक्रमी नहीं निकला जो हूणों से साम्राज्य की रक्षा कर सकता।

स्कंदगुप्त के एक उत्तराधिकारी भानुगुप्त के समय में हूण राजा तोरमाण ने लगभग ५१० ई० में गुप्तों से मालवा और राजपूताना छीन कर वहाँ अपना राज्य स्थापित कर लिया। उसके बाद गुप्त राजाओं का प्रभुत्व धीरे-धीरे समाप्त हो गया। गुप्तों के बाद कुछ समय तक मगध और उत्तरी भारत में हूण, यशोधर्मा, पिछले गुप्त और मौखरी राजाओं ने राज्य किया। इनका वर्णन आगे किया जायगा।

हमारे राष्ट्र का स्वर्ण-युग—गुप्त राजाओं के समय का भारत बहुत ही खुशहाल और श्रीसम्पन्न था। इसी कारण गुप्त राजाओं के समय या युग को भारत के इतिहास का सोने का या 'स्वर्ण-युग' कहते हैं। गुप्त-काल में बहुत समय तक खूब अमन-चैन तथा शांति रही। इस कारण भारतीयों ने तब हर क्षेत्र में अद्‌भुत उन्नति कर दिखायी। हिंदू या ब्राह्मण-धर्म का इस समय अत्यधिक प्रचार हुआ। संस्कृत-साहित्य की उन्नति हुई। कला-कौशल तथा व्यापार में भी उन्नति एवं वृद्धि हुई। अतः ऐसे समय को हमारे इतिहास का स्वर्ण-युग ठीक ही कहा गया है।

शासन—राजा का स्थान सबसे ऊपर था। राजा को परमभट्टारक, परमेश्वर और महाराजाधिराज आदि कहते थे। गुप्त राजा अपने को प्रजा का रक्षक मानते थे और प्रजा के हित के लिए अपने को उत्तरदायी समझते थे।

गुप्त साम्राज्य

ति ब्ब त

हि मा ल य प र्व त

गु ज रा त

म हा को श ल

ब ङ्गा ल की खा ड़ी

अ र ब सा ग र

फाहियान की यात्रा का मार्ग
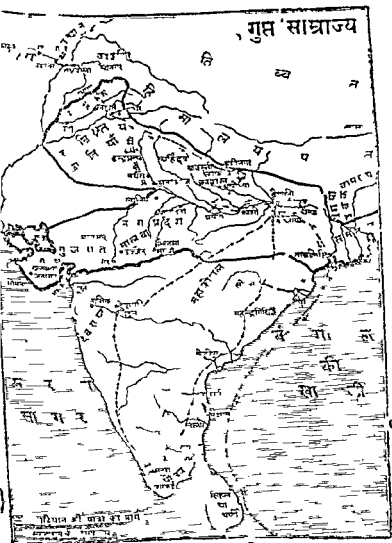
प्रजा में जो दीन-दुःखी होते उनका गुप्त राजा सदा खयाल रखते थे। सार्वजनिक हित के कार्यों, जैसे—कुएं खुदवाना, सड़कें, शफाखाने और यात्रियों के लिए धर्मशालाएं आदि बनवाने पर बहुत ध्यान रखा जाता था। गुप्त राजाओं के समय में प्रजा सुशासित थी और सर्वत्र सुख और शान्ति विराजती थी। जनता पर कर अधिक न थे, दंड कठोर नहीं था और लोगों को व्यक्तिगत स्वतंत्रता काफी थी।

राजा को राज-काज में मदद देने के लिए मंत्री हुआ करते थे। सेना का सबसे बड़ा अधिकारी महासेनापति या महाबलाधिकृत कहलाता था। न्याय के लिए न्यायाधीश होते थे। इसी प्रकार हर विभाग के लिए अलग-अलग अधिकारी या अध्यक्ष नियुक्त रहते थे।

गुप्त-साम्राज्य काफी लम्बा-चौड़ा था; इसलिए शासन की सुविधा के लिए सारा राष्ट्र या देश राज्य या जिलों में बंटा हुआ था। राज्यों के शासन के लिए उपरिक-महाराज अर्थात गवर्नर और जिलों के लिए विषयपति या जिलाधीश हुआ करते थे। गाँवों के शासन के लिए गाँव के मुखिया होते थे जो ग्राम-पंचायतों की सहायता से काम किया करते थे।

आर्थिक जीवन, व्यापार और उद्योग-धंधे—

अधिकतर जनता खेती कर के जीविका पैदा करती थी, लेकिन लोग खेती के अलावा कई प्रकार के उद्योग-धंधे भी किया करते थे। गुप्त-काल में कपड़े, धातुओं, जवाहरातों

तथा पत्थर और लकड़ी की कारीगरी आदि के व्यवसाय उन्नति पर थे।

इस समय व्यापार भी उन्नति पर था। यहाँ की बनी चीजें जहाजों में भर कर विदेशों को पहुँचाया जाता था। रोम से इस समय बहुत अधिक व्यापार हुआ करता था। इस समय के मुख्य बन्दरगाह, जहाँ से माल बाहर भेजा जाता था, भड़ोंच और सोपारा (बम्बई के पास) थे। पाटलिपुत्र से भड़ोंच तक माल पहुंचाने के लिए एक बहुत बड़ी सड़क बनी हुई थी। रोम के अलावा अरब, ईरान और मिस्र से व्यापार होता था। इस व्यापार के कारण हमारे देश में खूब धन आया और लोगों की आर्थिक दशा सुधर गयी।

ब्राह्मण या हिंदू-धर्म—गुप्त राजा हिंदू या ब्राह्मण-धर्म के माननेवाले थे; इसलिए उनके समय में ब्राह्मण-धर्म फिर बढ़ने लगा और बौद्ध-धर्म घटता चला गया। गुप्त राजाओं ने हिंदू देवी-देवताओं के कई मन्दिर बनवाये और उनके प्रचार व प्रसार में कोई कमी न रखी। विष्णु, शिव, सूर्य, पार्वती, दुर्गा और लक्ष्मी आदि की मूर्त्तियों का इस समय बहुत प्रचार हुआ। उनकी प्रशंसा में पुस्तकें भी लिखी गयीं। हिंदू-धर्म की पुस्तकों, जैसे पुराण - दि, का भी इस समय बहुत प्रचार-प्रसार हुआ था प्रमुख पुराण-ग्रंथों के नये संस्करण भी तैयार किये गये। इस समय विशेष कर वैष्णव-धर्म और शैव-धर्म का सबसे अधिक

अजन्ता की गुफा का बाहरी भाग

और, काव्य आदि लिखे गये। महाकवि कालिदास, जिनका हम पहले वर्णन कर चुके हैं, इस समय के महान कवि और नाटककार थे। सभी गुप्त राजा विद्या के प्रेमी और विद्वानों के आश्रयदाता हुए; इसलिए हर प्रकार के ज्ञान-विज्ञान में इस समय उन्नति होना स्वाभाविक था। गणित के प्रसिद्ध विद्वान् आर्यभट्ट, वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त भी इसी समय में हुए। संस्कृत भाषा में जितने सुन्दर नाटक और काव्य आदि इस समय लिखे गये उतने किसी और समय में नहीं लिखे गये थे।

गुप्त राजा साहित्य की तरह संगीत, चित्र तथा मूर्ति-कला आदि के भी बहुत प्रेमी थे; इसलिए इन कलाओं ने भी गुप्त-काल में विशेष उन्नति की। देवी-देवताओं का प्रचार होने से इस समय वास्तु-कला और और मूर्ति-कला में अत्यधिक उन्नति हुई। गुप्त-काल की बनी हुई मूर्तियाँ बहुत ही सजीव और सुन्दर हैं। इन मूर्तियों को देखते ही बनता है। मूर्ति-कला के इस समय तीन मुख्य केन्द्र थे—पाटलिपुत्र, सारनाथ और मथुरा; लेकिन सबसे ज्यादा मूर्तियाँ सारनाथ में ही बनती थीं। सारनाथ में गुप्त-काल की बहुत-सी मूर्तियाँ मिली हैं।

मंदिर भी इस तरह बहुत बने। गुप्त-काल के मन्दिर बहुत ही विशाल और भव्य होते थे। वास्तु-कला के वे बढ़िया नमूने माने जाते हैं। भीतर गाँव और देवगढ़ में गुप्त-काल के बने मन्दिरों के खँडहरों को देखने से गुप्त वास्तु-कला का अंदाजा लगाया जा सकता है।

तोरमाण के बाद उसका लड़का मिहिरकुल गद्दी पर बैठा। उसका राज्य पंजाब से ले कर मध्यप्रांत तक फैला हुआ था, लेकिन सन् ५२३ ई० के लगभग मंदसोर (पश्चिमी मलावा) के प्रतापी राजा यशोधर्मा ने मिहिरकुल को बुरी तरह परास्त किया और पंजाब तथा राजपूताना से उसे निकाल बाहर किया। कहते हैं, गुप्त राजा बालादित्य ने भी उसे हराया था। इस हार के बाद मिहिरकुल भाग कर कश्मीर चला गया। वहाँ के राजा ने उसकी आवभगत की, लेकिन वह कृतघ्न निकाला। मौका पा कर मिहिरकुल ने कश्मीर के राजा को मार डाला और स्वयं वहाँ का राजा बन बैठा। सन् ५४५ ई० के लगभग मिहिरकुल मर गया। उसके बाद हूणों का राज्य भी भारत में समाप्त हो गया।

मिहिरकुल शिव का परम भक्त था, लेकिन बौद्धों का वह बड़ा भारी शत्रु था। कहते हैं, उसने बौद्धों के अनेक मठों और स्तूपों को नष्ट करवा दिया था।

हूण राजाओं ने हिन्दू-धर्म को अपनाया था; इसलिए जो हूण भारत में बसे वे हिन्दू-धर्म को ग्रहण कर के धीरे-धीरे हिन्दू-समाज में ही समा गये।

यशोधर्मा—गुप्तों का ह्रास होने पर मंदसोर या मालवा में यशोधर्मा नाम के एक बहुत प्रतापी राजा का उदय हुआ। कहते हैं, उसने हिमालय से पश्चिम समुद्र तक और ब्रह्मपुत्र से पूर्वीघाट तक के समस्त राज्यों को अपने अधीन कर लिया था। अतः वह अपने को 'राजाधिराज'

'परमेश्वर' और 'सम्राट' कहता था। उसने ई० सन् ५३३ के लगभग हूणों के राजा मिहिरकुल को युद्ध में बुरी तरह पछाड़ा था। कहते हैं कि जिन राज्यों को गुप्त राजा तक न जीत सके थे उन्हें भी उसने अपने पराक्रम से पराजित किया। इन विजयों के अलावा यशोधर्मा का और कोई हाल मालूम नहीं हो सकता है! वह किसका लड़का था और उसके बाद उसके लड़के आदि कौन हुए—इसका कुछ पता नहीं चलता। उसका वंश कौन-सा था, इसका भी पता नहीं चल सका है।

पिछले गुप्त—समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के वंशजों का राज्य समाप्त होने पर मगध में कुछ समय तक उन्हीं के नामधारी राजाओं ने राज्य करना शुरू किया; इसलिए एक-से नामवाले मगध के इन राजाओं को 'पिछले' गुप्त-वंश का कहा जाता है।

पिछले गुप्त-वंश का पहला राजा कृष्णगुप्त हुआ। उसके वंशजों में सातवीं सदी में आदित्यसेन नाम का एक प्रतापी राजा हुआ। महाराज हर्ष के मरने पर आदित्यसेन शक्तिशाली हो गया और उसने महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की। उसने लगभग सन् ६७२ ई० तक राज्य किया।

उसके बाद पिछले गुप्तों में कोई शक्तिशाली राजा नहीं हुआ। लगभग आठवीं सदी के मध्य में इस वंश का राज्य समाप्त हो गया।

मौखरी वंश—मौखरी राजाओं का राज्य गंगा

की घाटी में था जिसमें उत्तर-प्रदेश और मगध का कुछ भाग शामिल था। इनकी राजधानी कन्नौज थी। मौखरी वंश का पहला राजा हरिवर्मन हुआ। इस वंश में ईशानवर्मन, बड़ा प्रतापी और वीर राजा हुआ। इसका राज्य-काल ई० सन् ५५४ में पड़ता है। उसने आंध्र, उड़ीसा और बंगाल के राजाओं को लड़ाई में हराया और महाराजाधिराज की उपाधि ग्रहण की, लेकिन पिछले गुप्त-वंश के एक राजा से इसे हार खानी पड़ी।

इस वंश का अन्तिम राजा ईशानवर्मन का पौत्र ग्रहवर्मन हुआ। ग्रहवर्मन का विवाह हर्षवर्द्धन की बहन राज्यश्री से हुआ था, किन्तु सिंहासन पर बैठने के थोड़े ही समय बाद मालवा के राजा ने कन्नौज पर आक्रमण कर ग्रहवर्मन को मार डाला (सन् ६०६)। उसकी मृत्यु के बाद मौखरी राज्य समाप्त हो गया और हर्षवर्द्धन ने कन्नौज को अपने राज्य में मिला लिया।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. तोरमाण और मिहिरकुल कौन थे ?
२. यशोधर्मा का हाल बतलाइये ?
३. गुप्तों के बाद मगध में किसने राज्य किया ?
४. मौखरियों में कौन कौन राजा हुए ?

अध्याय १४

पुष्यभूति-वंश

पुष्यभूति वंश की स्थापना छठी सदी के प्रारम्भ में थानेश्वर में हुई। थानेश्वर पंजाब के पूर्व में है। इस वंश के संस्थापक का नाम पुष्यभूति था; इसलिए यह वंश पुष्य-भूति-वंश कहलाया।

प्रभाकरवर्द्धन, राज्यवर्द्धन—इस वंश का पहला प्रतापी राजा प्रभाकरवर्द्धन हुआ। उसने पंजाब के हूणों को हराया तथा सिन्ध, गुर्जर या गुजरात और मालवा के राजा से अपना लोहा मनवाया। इस वीर और प्रतापी राजा के दो बेटे और एक बेटी थी। उसके बेटों का नाम राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन था और बेटी का नाम राज्यश्री। यह राज्यश्री मौखरी राजा ग्रहवर्मन से ब्याही गयी थी।

प्रभाकरवर्द्धन के मरने पर सन् ६०५ ई० में राज्यवर्द्धन गद्दी पर बैठा। इसी समय मालवा के राजा ने कन्नौज पर चढ़ाई कर ग्रहवर्मन को मार डाला और उसकी पत्नी राज्यश्री को कैद कर लिया। इस दुःखद समाचार के मिलते ही राज्यवर्द्धन फौरन सेना ले कर कन्नौज की ओर बढ़ा। रास्ते में मालवा-नरेश से उसका मुकाबला हो गया। राज्यवर्द्धन ने मालवा के राजा को बुरी तरह से परास्त किया, लेकिन इसके बाद जब आगे बढ़ा तो रास्ते में

बंगाल के राजा शशांक ने सन् ६०६ ई० में धोखे से उसे मार डाला।

हर्षवर्द्धन—राज्यवर्द्धन की मृत्यु होने से उसके छोटे भाई हर्षवर्द्धन को बहुत दुःख हुआ और अपने भाई के घातक शशांक से बदला लेने का निश्चय किया।

गद्दी पर बैठते ही (६०६ ई०) उसने पहले अपनी बहन की सुधि ली। बहन राज्यश्री को कैद से छुड़ाने के लिए वह कन्नौज पहुँचा। वहाँ उसे पता लगा कि किसी एक गुप्त-कुलपुत्र ने राज्यश्री को कैद से छुड़ा लिया है और वह विन्ध्याचल की तरफ चली गयी है। अतः हर्ष कन्नौज पर अधिकार करने के बाद विन्ध्याचल की ओर गया और किसी तरह राज्यश्री का पता लगा कर उसे अपने साथ कन्नौज ले आया।

महान विजेता—गुप्तसम्राट समुद्रगुप्त और चंद्रगुप्त विक्रमादित्य की तरह हर्षवर्द्धन एक महान विजेता था। उसने बंगाल के राजा शशांक से अपने भाई की हत्या का बदला लेने के लिए बंगाल पर चढ़ाई की और अन्त में उसकी बढ़ती हुई शक्ति को दबा दिया।

हर्ष ने संभवतः कश्मीर और सिन्ध के राजाओं को भी युद्ध में परास्त किया। चीनी-यात्री ह्वेनसाँग ने लिखा है कि गद्दी पर बैठते ही उसने लगातार ६ वर्षों तक लड़ाइयाँ लड़ीं और पूर्व से पश्चिम तक सारे उत्तरी भारत को अपने अधिकार में कर लिया।

हर्षका साम्राज्य
गान्धार
पुरुषपुर
सिन्धु नदी
थानेश्वर
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
कन्नौज
काशी
चम्बल नदी
प्रयाग
पाटलिपुत्र
गया
नर्मदा नदी
ताम्रलिप्ति
सौराष्ट्र
महानदी
गोदावरी नदी
अमरावती
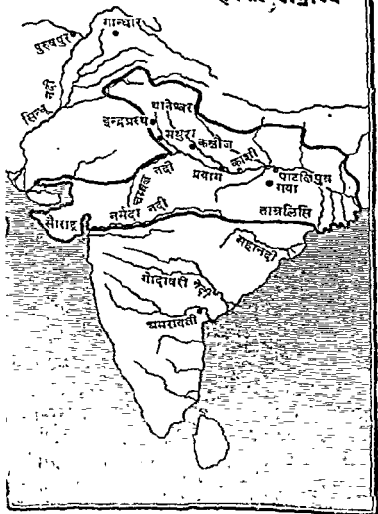
लगभग सारे उत्तरी भारत को अधिकार में करने के बाद हर्ष ने पश्चिमी भारत के वल्लभी राजा को हराया और गुजरात तथा काठियावाड़ के राजाओं से कर वसूल किया। उत्तरी और पश्चिमी भारत को जीतने के बाद हर्ष ने समुद्रगुप्त की तरह दक्षिण पर भी आक्रमण करना चाहा। इस ध्येय से वह सेना ले कर सन् ६३० ई० के लगभग विन्ध्याचल की ओर बढ़ा, किन्तु दक्षिण के प्रतापी चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय ने बड़ी वीरता के साथ उसका समना किया और उसे वापस लौट जाने को बाध्य किया।

हर्ष का अंतिम आक्रमण सन् ६४१ ई० के लगभग गंजाम पर हुआ। लगभग सन् ६४७ ई० में इस वीर और साहसी सम्राट की मृत्यु हो गयी।

योग्य शासक—पश्चिमी पंजाब और राजपूताना को छोड़ कर हर्ष का साम्राज्य हिमालय से ले कर नर्मदा और गुजरात से ले कर उड़ीसा तक फैला हुआ था। कश्मीर, सिन्ध, वल्लभी और कामरूप के राजा भी उसका लोहा मानते थे। यही कारण है कि हर्ष को उत्तरापथ का स्वामी कहा जाता है। वह बड़ा ही उदार, योग्य और प्रजाभक्त राजा था। साम्राज्य का सारा काम वह खुद बड़े परिश्रम से करता था। अपने सुशासन के लिए वह प्रसिद्ध था। बरसात के दिनों को छोड़ कर बाकी साल भर वह अपने राज्य का दौरा किया करता और स्वयं गाँववालों की

फरियाद सुनता था। जो अधिकारी प्रजा को तंग करते उन्हें वह कड़ा दंड देता था। राज-काज में मदद देने के लिए मंत्री नियुक्त थे। प्रजा पर कर बहुत हलके थे। जनता में अमन-चैन था। लोग समृद्ध और सुखी थे। अतः इस समय अपराध भी कम होते थे। चोरी और राज-विद्रोह करने पर अंग-भंग का दंड दिया जाता था।

विद्या का प्रेमी—गुप्त राजाओं की तरह हर्ष भी विद्या का प्रेमी और विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके दरबार का कवि बाणभट्ट अपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध है। बाण ने हर्ष का जीवन-चरित्र लिखा है। संभवतया हर्ष स्वयं भी बड़ा अच्छा लेखक, विद्वान और नाटककार था। उसने तीन नाटक लिखे थे। उसके नाटकों की विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की है।

हर्ष का धर्म—हर्ष बौद्ध-धर्म का अनुयायी था, लेकिन दूसरे धर्मों के प्रति भी वह उदारता का भाव रखता था। बौद्ध-धर्म के उत्सव मनाने के लिए वह कन्नौज में सभाएँ किया करता था। चीनी यात्री ह्वेनसांग जिस समय यहाँ था उस समय भी कन्नौज में हर्ष ने बौद्ध-धर्म का महोत्सव मनाया था। इस महोत्सव में भाग लेने के लिए देश भर के बौद्ध और ब्राह्मण पंडित तथा साधु आदि वहाँ आये थे। इस महोत्सव के अवसर पर कई दिन तक बुद्ध की पूजा होती रही।

इस सभा के समाप्त होने पर हर्ष सन् ६४३ ई०

में ह्वेनसांग को अपने साथ प्रयाग ले गया। प्रयाग में हर्ष हर पाँचवें साल दान का महोत्सव मनाता था। इस बार यह महोत्सव छठी बार मनाया जा रहा था। अनेक राजा, बौद्ध, ब्राह्मण और जैन पंडित उनमें भाग लेने आये थे। इनके अतिरिक्त लाखों दीन-दुःखी दान लेने वहाँ पहुँचे थे। समस्त भारत से लगभग पाँच लाख मनुष्य प्रयाग में जमा हुए थे। हर्ष इस अवसर पर प्रतिदिन बारी-बारी से बुद्ध, सूर्य और शिव की पूजा किया करता था। इसके बाद वह कई रोज तक सब धर्मों के अनुयायियों और दीन-दुःखियों को मुक्त-हस्त होकर दान देता था। दान देते-देते वह अपना सारा राज-कोष खाली कर डालता था। अंत में वह अपने शरीर के गहने, जवाहरात तथा वस्त्र भी दान कर डालता था। जब वह बिलकुल खाली हो जाता तब अपनी बहन राज्यश्री से वस्त्र माँग कर पहनता था। हर्ष के इस दान की महिमा अपार है। इतना बड़ा दानी संसार में शायद ही कोई हुआ हो।

महाराज हर्षवर्द्धन सचमुच हमारे देश के महान राजाओं में से एक थे। प्रजा-पालन में वह हमेशा दत्तचित्त रहते थे। प्रजा के हित के लिए उन्होंने सड़कें और धर्मशालाएँ बनवायीं तथा निःशुल्क औषधालय खोले। इस महान सम्राट का कोई उत्तराधिकारी न था; इसलिए सन् ६४७ ई० में उनकी मृत्यु हो जाने पर उनका साम्राज्य नष्ट हो गया।

ह्वेनसांग—हर्ष के समय में चीनी यात्री ह्वेनसांग हमारे देश में आया था। सन् ६३० ई० से लेकर ६४३ ई० तक वह हमारे देश में ही घूमता-फिरता रहा। उसने हर्ष के समय में भारत की जैसी दशा देखी उसका बहुत अच्छा वर्णन लिखा है।

समृद्धिशाली नगर—ह्वेनसांग ने यहाँ के नगरों की समृद्धि और वैभव का बहुत अच्छा वर्णन किया है। उसने लिखा है कि कन्नौज और थानेस्वर बहुत ही धनी और सुन्दर नगर थे। इन नगरों में अनेक व्यापार हुआ करते थे। उसने लिखा है कि उज्जैन नगर की दूकानों में हीरे, मोती आदि जवाहरात ढेरों में खुले आम बिकते थे। अमीर लोग बड़े-बड़े मकानों में और गरीब झोपड़ों में रहते थे। नगर काफी संख्या में थे, पर ज्यादातर लोग गाँवों में ही रहते और खेती करते थे।

उद्योग-धंधे—गुप्त-युग की तरह इस समय उद्योग-धंधे भी उन्नत अवस्था में थे। कई प्रकार के सूती, रेशमी और ऊनी कपड़े तैयार किये जाते थे। धातु के बर्तन और सोने-चाँदी के आभूषण आदि बनाने का काम बहुत अच्छा होता था। बच्चों के खेलने के लिए मिट्टी के खिलौने भी बहुत अच्छे बनते थे।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि यहाँ के लोग सात वर्ष की उम्र से बच्चों को पढ़ाना शुरू कर देते थे। पढ़ाई में एक विषय दस्तकारी भी था।

नालंद-विश्वविद्यालय—ह्वेनसांग ने लिखा है कि हर्ष के समय में विहार का नालंद बौद्ध-विहार शिक्षा का बहुत बड़ा केंद्र था। कहा जाता है इस विश्वविद्यालय में लगभग १०,००० छात्र निःशुल्क शिक्षा पाते थे। छात्रों को पढ़ाने के लिए सैकड़ों विद्वान नियुक्त थे। इसका सारा खर्च राजा और अमीरों के दिये हुए दान से चलता था। यह नालंद-विश्वविद्यालय आज भी खँडहर के रूप में विद्यमान है।

भारतवासियों का चरित्र—ह्वेनसांग ने भारत के लोगों के चरित्र की बड़ी प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि भारतीय उच्च आदर्शवाले और सत्य व्यवहार करनेवाले होते हैं। उसने भारत के लोगों की विनम्रता और शील-स्वभाव की भी बड़ी प्रशंसा की है। ह्वेनसांग के वर्णन से प्रकट होता है कि हर्ष के समय में भारत अत्यन्त समृद्ध, महान और गौरवशाली था।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. पुष्यभूति-वंश का संस्थापक कौन था ?
२. हर्षवर्द्धन को योग्य शासक क्यों कहा जाता है ?
३. ह्वेनसांग ने भारत के बारे में क्या-क्या लिखा है ?

अध्याय १५

बृहत्तर भारत

विदेशों में—हम वर्णन कर आये हैं कि कतिपय विद्वानों के अनुसार वैदिक काल में पणि नाम की व्यापारी जाति प्राचीन सुमेरिया, काल्डिया, मिस्र और
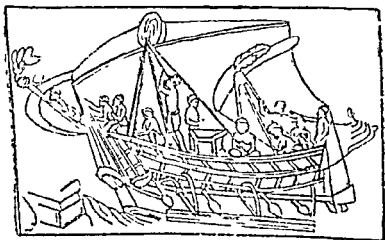
प्राचीन भारत का एक जहाज

फिलीशिया आदि देशों में पहुंची और वहाँ के लोगों से सम्बन्ध स्थापित किया। इस तरह सुदूर वैदिक काल से ही भारत के व्यापारी विदेशों में आने-जाने लगे थे। उनके साथ भारत की सभ्यता और संस्कृति भी विदेशों में पहुँची।

बृहत्तर भारत—व्यापारियों के अलावा ब्राह्मणों

और बौद्ध-धर्म के प्रचारकों ने भी विदेशों में जा कर अपने-अपने धर्म का प्रचार किया। धर्म-प्रचारकों के साथ क्षत्रिय विजेता भी एशिया के अनेक देशों में पहुँचे। उन्होंने वहाँ पर अपने राज्य भी स्थापित किये। हिन्दुओं के ये राज्य अधिकतर लंका, बर्मा, सुमात्रा, जावा, बाली, बोर्नियो, चंपा, कंबोडिया, स्याम, तिब्बत तथा खोतान में थे। इस्टइंडीज और दक्षिण-पूर्वीय एशिया के इन हिन्दू-राज्यों को मिला कर बृहत्तर भारत कहा जाता है। अब इन राज्यों का हम यहाँ पर संक्षेप में वर्णन करेंगे।

लंका—कलिंग के राजा विजय ने लंका को जीता और वहाँ पर एक भारतीय राज-वंश का राज्य स्थापित किया। इस वंश के राजाओं ने लंका में बहुत काल तक राज्य किया। भारतीय राजवंश के साथ-साथ भारत का बौद्ध-धर्म भी यहाँ पर खूब फला-फूला। लंका की राजधानी अनिरुद्धपुर बौद्ध-धर्म का केंद्र हो गयी। आज भी लंका में बौद्ध-धर्म के माननेवाले रहते हैं।

बर्मा—लंका से फिर बर्मा और स्याम में भी बौद्ध-धर्म फैल गया। बर्मा को प्राचीन काल में सुवर्णभूमि कहा करते थे; क्योंकि प्राचीन भारतीयों का खयाल था कि यहाँ पर सोना बहुत होता है। कहा जाता है, अशोक ने भी अपने धर्म-प्रचारक बर्मा में भेजे थे। बर्मा में बौद्ध-धर्म के साथ-साथ ब्राह्मणों द्वारा वैदिक-धर्म का भी प्रचार हुआ; इसलिए बर्मा में जहाँ-तहाँ विष्णु भगवान की मूर्तियाँ भी पायी गयी हैं। बर्मा

के साथ प्राचीन काल में दक्षिण के पल्लव राजाओं का घनिष्ट सम्बन्ध था और वहाँ से भारत का व्यापार हुआ करता था।

ईस्टइण्डीज या पूर्वीय द्वीप-समूह में भारत के उपनिवेश—पहली सताब्दी ई० सन् के बाद से भारत ने पूर्वीय द्वीपों में जा कर अपने राज्य अथवा उपनिवेश स्थापित किये। इन राज्यों के स्थापित होने के फलस्वरूप इन द्वीपों में हिन्दू और बौद्ध-धर्मों का खूब प्रचार हुआ।

हिंदएशिया का शैलेंद्र वंश—ई० सन् की ८वीं और ९वीं सदी में सुमात्रा, जावा और मलाया में, जिसे हिंद-एशिया कहते हैं, शैलेंद्र नामक भारतीय राज-वंश के राजा शासन करते थे। ये राजा बौद्ध-धर्म के बड़े समर्थक हुए; इसलिए उनके समय में जावा, सुमात्रा आदि में बौद्ध-धर्म का बहुत प्रचार हुआ। जावा में बोरोबोदोर मन्दिर के जो खँडहर मिले हैं उनसे वहाँ की उच्च कोटि की वास्तु-कला का पता चलता है। बोरोबोदोर में बनी हुई बुद्ध की मूर्तियाँ भी बहुत सुन्दर हैं।

बाली का हिंदू-राज्य—जावा के पूर्व में बाली नाम का एक द्वीप है। प्राचीन समय में ब्राह्मण प्रचारकों ने बाली द्वीप में जा कर हिंदू-धर्म का प्रचार किया था। आज भी बाली द्वीप में हिन्दू-धर्म विद्यमान है। दूसरी शताब्दी ई० सन् में यहाँ पर हिंदू-राज्य स्थापित हो गया था। उस समय यहाँ पर कौण्डिन्य-वंश के राजा राज्य करते थे।

हिंदू-धर्म के साथ-साथ बौद्ध-धर्म का भी यहाँ काफी प्रचार हुआ। अगर आज आप' बाली द्वीप जायं तो आपको यह देख कर आश्चर्य होगा कि वहाँ की स्त्रियाँ भी हिंदू-स्त्रियों की तरह मंदिरों मे हिंदू देवी-देवताओं की पूजा करतीं, व्रतादि रखतीं और उत्सव मनाती हैं। अतः आपको वहाँ पर ऐसा प्रतीत होगा जैसे अपने ही किसी तीर्थ-स्थान में घूम रहे हों। बाली की तरह बोर्नियों में भी हिंदू-धर्म का काफी प्रचार हुआ। इन द्वीपों में हिंदू-राजवंश १४वीं शताब्दी ई० सन् तक राज्य करते रहे। उसके बाद इन द्वीपों पर मुसलमानों का कब्जा हो गया।

कंबोडिया—ई० सन् पहली शताब्दी में कंबोडिया में भी भारत के राज-वंश का राज्य स्थापित हो गया था। ८वीं ९वीं शताब्दी में यह हिंदू-राज्य बहुत उन्नति कर गया था। यहाँ के लोग उस समय विष्णु और शिव की पूजा किया करते थे। बौद्ध-धर्म का भी यहाँ पर कुछ-कुछ प्रचार हुआ। यहाँ के लोग संस्कृत भाषा और महाभारत तथा रामायण को बड़े चाव से पढ़ा करते थे। १२वीं शताब्दी के बाद यहाँ का हिंदू-राज्य समाप्त हो गया।

चंपा के हिंदू-राजवंश—कंबोडिया के उत्तर में चंपा का राज्य है। लगभग दूसरी शताब्दी में यहाँ पर श्रीराम नाम के एक हिंदू राजा ने अपना राज्य स्थापित किया। प्राचीन काल के चंपा के हिन्दू-राजाओं में भद्रवर्मन नाम का राजा बड़ा ही प्रतापी हुआ। भद्रस्वामी नाम से

अपने को भारतीय समझना उनके लिए गौरव की बात थ

खोतान और चीन—तिब्बत की तरह खोत में भी बहुत पहले ही बौद्ध-धर्म का प्रचार हो गया था, लेकि सबसे अधिक धर्म का प्रचार यहाँ पर कनिष्क के स किया गया। यहीं से बौद्ध-धर्म चीन में पहुँचा। इ अलावा कंबोडिया, चंपा तथा भारत से भी बौद्ध-धर्म-प्रच चीन में गये और वहाँपर गौतम बुद्ध के धर्म सन्देश का प्रचार किया।

बौद्ध-धर्म चीन से कोरिया और फिर वहाँ से जापान पहुँ इन देशों में आज भी ज्यादातर लोग बौद्ध-धर्म को मानते

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के प्राचीन ब्राह बौद्ध और क्षत्रिय कितने उत्साही और वीर थे। उनकी व और उत्साह के फल से ही एक समय हमारा राज्य पूर्वीय द्वीप-समूहों, हिंदएशिया, कंबोडिया और चंपा आदि फैला और हमारी संस्कृति का एशिया तथा योरप में प्र हुआ। भारत की सीमाएँ तब अपने ही तक सिमित न रह बाहर के द्वीपों और देशों तक फैल गयीं जिसके कारण दोनों को मिला कर भारत का नाम वृहत्तर भारत हुआ

अभ्यास के लिए प्रश्न

१. लंका और बर्मा मे भारतीय संस्कृति किस तरह फैली ?
२. शैलेन्द्र वंश और कौण्डिन्य वंश के बारे में आप क्या जानत
३. एशिया के किन किन देशों में हिन्दू और बौद्ध-धर्म का प्र हुआ ? वृहत्तर भारत किसे कहते हैं ?